हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

बारहवाँ भाग । अंक ६.

जैनहितैषी ।

जून, १९१६. ज्येष्ठ, २४४२.

सारे ही संघ सनेहके सूतसौं, संयुत हों, न रहे कोउ द्वेषी ।
प्रेमसौं पालैं स्वधर्म सभी, रहैं सत्यके साँचे स्वरूप-गवेषी ॥
बैर विरोध न हो मतभेदतैं, हों सबके सब बन्धु शुभैषी ।
भारतके हितको समझें सब, चाहत है यह जैनहितैषी ॥

अनमेल विवाह ।

[लेखक—श्रीयुत **सूरजभानु** वकील ।]

यह बात सभी जानते हैं कि स्त्री और पुरुष गृहस्थरूपी गाड़ीके दो पहिये हैं। जिस तरह गाड़ीके दोनों पहिये समान होनेपर ही गाड़ी चल सकती है—असमान अर्थात् छोटे बड़े होनेसे नहीं चल सकती; उसी तरह स्त्री-पुरुषका उचित मेल होनेपर ही गृहस्थी भलीभाँति चल सकती है, अनमेल होनेपर नहीं, परन्तु खेद है कि भारतवर्षमें अनमेल विवाह कुछ कम नहीं होते हैं—कभी आठ वर्षके बालकको १५ वर्षकी कन्या ब्याह दी जाती है और कभी ६० वर्षके बूढ़ेके साथ आठ वर्षकी बालिकाका गँठजोड़ा कर दिया जाता है, और ऐसी दशामें भी गृहस्थीकी गाड़ीको आगे चलानेकी कोशिश की जाती है और उससे सुख शान्तिकी आशा बाँधी जाती है, परन्तु इस अनमेल विवाहका फल वही होता है जो होना चाहिए। इससे गृहस्थीका सारा ढाँचा बिगड़ जाता है और दंगा-फिसाद, लड़ाई-झगड़ा, रोना-झींखना, कलह, चिन्ता, दुराचरण, निर्लज्जता और अपकीर्ति उत्पन्न होकर वह घर नरकका नमूना बन जाता है। केवल इतना ही नहीं, इस अनमेल विवाहसे जो संतान पैदा होती है वह निर्बल, साहसहीन, कायर, भीरु और अपनी इच्छाओंकी ऐसी दास होती है कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसको मनुष्योंमें गिनना मानवजातिको बट्टा लगाना है । इस समय भारतवर्षकी जो दुर्दशा दिखाई देती है, उसका अधिकांश दोष यदि अनमेल विवाहके सिर पर थोपा जाय तो अनुचित नहीं है । यह एक चिन्ताकी बात है कि हमारे सुधारकोंका इस ओर जितना ध्यान जाना चाहिए उतना नहीं जाता है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं है, कि प्रकृतिने पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीजातिको कद, ताकत और साहसमें हीन बनाया है । घोड़ासे घोड़ी कमजोर होती है, बैलसे गाय कमजोर होती है, शुकसे शुकी निर्बल होती है, इसी तरह मानवजातिमें भी पुरुषकी अपेक्षा स्त्री कमजोर हुआ करती है । इसके अतिरिक्त स्त्री गर्भधारण करती है अर्थात् ९ महीने तक बच्चेको पेटमें धारण करती है, जिसके कारण वह दौड़–धूप और अधिक परिश्रमका काम नहीं कर सकती है । बच्चा पैदा होने पर उसके स्तनोंमें दूध पैदा होजाता है और वह दो तीन वर्ष तक बच्चेका लालन–पालन करनेसे छुट्टी नहीं पाती है । इस कारण वह एक जगह रहनेके लिए बाध्य है । अतएव अत्यंत प्राचीन समयसे समाजने यह व्यवस्था की है कि स्त्री घरमें रह कर घरू कामोंका प्रबंध करे और पुरुष बाहर जाकर अपनी आजीविका चलावे; परन्तु ऐसा तब हो सकता है जब स्त्री–पुरुषका जोड़ा समान और उपयुक्त हो । अनमेल अवस्थामें ऐसी आशा करना केवल स्वप्न मात्र है ।

मनुष्यकी सभ्यता और धर्मके आचार्योंने विवाहकी सृष्टि इस हेतुसे की है कि मनुष्य पशुसमाजकी बहुत गिरी हुई और अत्यन्त अशान्तिकारक अवस्थासे उन्नत होकर एक पुरुष या एक स्त्रीसे अपनी कामवासनाको परिमित रखकर शील और संतोषके साथ अपनी उमर बितावें । इसके सिवा मनुष्यमें वचनशक्ति भी है, जिसके कारण उसे यह अभिलाषा होती है कि वह एक ऐसा सच्चा मित्र बनावे जिसको वह अपने हृदयके विचार, अपनी गुप्त बातें अपने दुख–दर्दको बेखटके सुना सके; जिसके सामने वह अपने हृदयको खोलकर रख सके और जिससे सच्ची सहानुभूति प्राप्त कर सके । ऐसा सच्चा मित्र पुरुषके लिए उसकी स्त्री और स्त्रीके लिए उसका पुरुष ही हो सकता है, क्योंकि इनकी प्रत्येक बातमें दोनोंका ही सुख–दुख गर्भित रहता है, परन्तु यह सब तब ही हो सकता है, जब स्त्री–पुरुषका जोड़ा समान और उपयुक्त हो ।

इसके सिवा विवाहके और भी कई उद्देश्य हैं; परन्तु इस विषयपर जितना अधिक विचार किया जाता है, उससे यही सिद्ध होता है कि विवाहका कोई भी प्रयोजन अनमेल विवाहसे सिद्ध नहीं हो सकता है; प्रत्युत अनमेल विवाह अनन्त आपत्तियोंका जन्मदाता और मनुष्यको मनुष्यत्वसे गिरा देनेवाला है । विवाहके उद्देश्यों पर विचार करनेसे यह बात स्पष्ट रूपसे विदित होती है कि गृहस्थीकी महत्ता और गृहस्थका सुख एक पुरुष और एक स्त्रीके जोड़ेसे ही है । इसके विरुद्ध यदि एक पुरुष और कई स्त्रियोंका विचित्र जोड़ा बनाया जाय या एक स्त्री और कई पुरुषोंका एक अद्भुत बंधान बाँधा जाय तो इससे विवाहका उद्देश्य पूरा न होकर उससे अनेक तरहके दुख ही उत्पन्न होनेकी संभावना है ।

जब हम इस बातका विचार करते हैं कि हिंदुस्थानमें अनमेल विवाहकी प्रथा क्यों चल पड़ी, तब हमें मालूम होता है कि हमारा स्वार्थ ही इसका मूल कारण है । स्वार्थका बहिरंग बहुत मनोहर और नानाप्रकारके लालच

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिखानेवाला होता है, परन्तु उसका फल बहुत ही भयंकर और नाना तरहकी आपत्तियोंमें फँसानेवाला होता है। पुरुषने किसी समय सोचा कि कमाई तो हम करते हैं और एड़ीसे चोटी तक पसीना बहाकर सब कुछ बटोरकर घरमें लाते हैं और स्त्री घर बैठे बैठे खाती है, इस कारण वह सर्वथा हमारे आश्रित है और हमारी दासी है; हमारा पूर्ण अधिकार है कि हम जो चाहें उससे काम लें। ऐसे विचारोंके कारण पुरुषोंने स्त्रीको अर्धाङ्गिनी मानना छोड़ दिया और तभीसे उसके हाथसे गृहप्रबंधका काम भी निकल गया—वह केवल दासीके रूपमें रह गई। इसका फल यह हुआ कि पुरुषोंके काममें बाधा आने लगी और उसे घर-गृहस्थीके कामोंकी भी चिन्ता रहने लगी। इससे स्त्री-पुरुषमें जो प्रेम-बंधन या मित्रताका नाता था वह टूट गया और पुरुषके लिए उसकी हृदयकी आकुलताको मिटानेवाला और उससे सच्ची सहानुभूति रखनेवाला कोई आसरा न रहा। इसी तरह उसके घर—गृहस्थी सम्बन्धी और कई काम भी तितर बितर हो गये और पुरुष भारी आपत्ति या उलझनमें पड़ गया; परन्तु उसके स्वार्थ और स्त्रियोंकी निर्बलताने उसकी आँखोंको न खुलने दिया—वह अपनी गलती न पहचान सका, वरन उसने यह विचारा कि गृहस्थीके चलानेके लिए जब एक स्त्रीरूपी दासीसे काम नहीं चलता तो अनेक स्त्रियोंका संग्रह करना चाहिए और उनसे भिन्न भिन्न काम लेकर गृहस्थीको सुचारु रूपसे चलाना चाहिए*। यह विचार आते ही पुरुषोंने भेड़ बकरियोंकी तरह स्त्रियोंका जखीरा जमा करना शुरू कर दिया और इस काममें ऐसी बढ़ा-चढ़ी होने लगी कि चाहे कितनी तकलीफ और दुर्दशा क्यों न हो, पर मेरा स्त्रियोंका जखीरा दूसरेसे अधिक ही निकले। अस्तु यदि एकके पास दस स्त्रियाँ हुईं तो दूसरा पन्द्रह संग्रह करनेकी कोशिश करने लगा। यह कोशिश बढ़ते बढ़ते सैकड़ों और हजारोंकी गिन्ती तक पहुँची। फल इसका यह हुआ कि स्त्रियोंके संग्रह करनेके सिवा पुरुषोंको और कोई कार्य्य ही न रहा। यहाँ तक कि राजाओंने प्रजाकी रक्षा, शिक्षा आदिका खयाल छोड़कर अपनी सारी शक्तिको रनवासकी स्त्रियोंकी संख्या बढ़ानेमें ही लगा दी। जिन पुराण और चरितग्रन्थोंको हम पढ़ते हैं, उनमें अधिकतर यही कथन मिलता है, कि अमुक राजाने दूसरे राजापर इस हेतु चढ़ाई की थी, कि वह अपनी लड़कीको अमुक राजाके साथ व्याह न करके मेरे साथ कर देवे। बस, केवल इसीके लिए खूब घमासान लड़ाई हुई, सहस्रों वीरोंके धड़से सिर जुदा हुए और खूनकी नदियाँ बहीं। पुराण और चरितग्रन्थोंमें अपने देश या जातिकी रक्षाके लिए वीरोंके वीरत्व या आत्मोत्सर्गके उदाहरण नामको भी नहीं मिलते हैं। उनके पढ़नेसे तो यही विदित होता है, कि जिस समय वे ग्रन्थ लिखे गये हैं, उस समय प्रतिदिन चारों ओर स्त्रियोंके लिए ही भारी भारी युद्ध हुआ करते थे। बहादुर लोग अपने अपने राजाओंको नवीन नवीन स्त्रियाँ प्राप्त करानेके लिए ही

---

* भारतमें बहुविवाहकी जो प्रथा चली है, उसका कारण विद्वान् लोग कुछ और ही बतलाते हैं। वे कहते हैं कि यह प्रथा आवश्यकताके कारण चली थी। जिस समय आर्य लोग यहाँ आकर और अनार्योंके प्रतिद्वन्दी हो कर बसे थे उस समय उन्हें अपना जनबल बढ़ानेकी जरूरत थी और इसके लिए बहुविवाह बहुत ही उपयोगी है। एक ही पुरुष अनेक स्त्रियोंसे अनेक सन्तान उत्पन्न कर सकता है। वर्तमान महायुद्ध यूरोपमें पुरुषोंकी संख्या कमकर रहा है, इसलिए यूरोपके विद्वान् भी कहने लगे हैं कि अब हमें बहुविवाहकी रीति चलानी पड़ेगी।

—सम्पादक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने गले कटवाते थे और दूसरोंके काटते थे।

हिन्दुस्थानको इस बातका बड़ा भारी गौरव प्राप्त है कि बहुत प्राचीन कालसे इस देशमें स्वयंवरकी रीति प्रचलित हो गई थी, और स्त्रीकी यहाँ तक कदर की जाती थी कि स्वयंवरके दिन दूर दूर प्रदेशोंसे बड़े बड़े योग्य पुरुष इस बातकी उम्मेदवारीमें आते थे कि स्वयंवर रचनेवाली युवती हमारे ही गलेमें जयमाल डाले और हमें ही पति स्वीकार करनेका अनुग्रह दर्शावे; परंतु पुराणोंके देखनेसे मालूम होता है, कि स्वार्थवश होकर लोगोंने स्वयंवरकी भी मिट्टी खराब कर दी। स्वयंवरमें आये हुए बहुसंख्यक विफल मनोरथ उम्मेदवारोंने लड़ाई झगड़ा करना और बलपूर्वक कन्याको लेजानेके लिए युद्ध करना प्रारंभ कर दिया। इस तरह स्वयंवरका शुभमंडप भी श्मसानभूमि बन गया। ऐसे समयमें माँ–बापके लिए कन्यायें घोर आपत्तिका कारण बन गई। यदि माँ–बाप स्वयंवर नहीं रचते और आप ही अपनी सम्मतिसे किसी योग्य वरके साथ कन्याका विवाह निश्चित करते थे, तो अन्य बलवान् लोग फौजें लेकर चढ़ आते थे; यदि स्वयंवर रचते थे तो अंतमें झगड़ा होता था, किसी तरह निस्तार नहीं था। ऐसे कारणोंसे बेटीवाले बड़ी आपत्तिमें फँस जाते थे। इसी कारण किसीके घर कन्या पैदा होना उसके दुर्भाग्यका लक्षण समझा जाता था। उसी दानसे उसके घर रोना पीटना शुरू हो जाता था। अन्तमें कन्याके माता पिताओंने खूब सोच विचार कर और सब तरहसे लाचार हो कर अपनी कन्याओंको भी अन्य धन–सम्पत्तिके समान एक प्रकारका माल असबाब समझकर—जिस प्रकार आजकल अफ़सरोंका डालीमें फल फूल आदि दिये जाते हैं–अपनी कन्याओंको देना शुरू कर दिया। उस समयके जिन जिन महापुरुषोंका चरित पुराणों वा चरितग्रन्थोंमें मिलता है, उनमें उनकी बहादुरी और बड़े बड़े कृत्य केवल इसी एक बातसे भरे हुए हैं, कि उन्होंने अमुक जगह जाकर इतनी कन्याओंके डोले लिए, वा उनके अमुक सत्कृत्य या बहादुरी पर उनको इतनी कन्यायें भेट दी गई!

कन्याओंको धन-सम्पत्ति समझकर नजर वा पुरस्कारमें देनेकी प्रथा भी अधिक स्थायी नहीं हुई। क्योंकि बलवान् पुरुष पहले हीसे इस बातका दावा करने लगे, कि अमुक कन्या जवान होनेपर हमको दी जाय। एक एक कन्यापर कई बलवानोंका दावा होनेके कारण बेटीवालोंकी आपत्ति कुछ कम न हुई। अतएव इस आपत्तिसे बचनेके लिए दूसरा सुगम मार्ग यह निकाला गया कि कन्या पैदा होते ही जानसे मार डाली जाय। तबसे कन्याओंके माँ बाप अपनी संतानके खूनसे आप ही अपने हाथ रंगने लगे, और इस तरह एक बड़ी भारी आपत्तिसे उनकी रक्षा होने लगी। हम अंगरेज सरकारको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते कि जिसने इस बड़े भारी पापसे हिंदुस्थानको बचाया; परंतु उस पुरानी रीतिका प्रभाव अब तक हमारे हृदयपर जमा हुआ है। यद्यपि हम राज्यके भयसे कायासे उक्त पाप नहीं कर सकते हैं, पर मन और वचनसे हम उससे मुक्त नहीं हुए हैं। कन्या पैदा होनेके दिनसे ही हम उसका मरना मनाते हैं और वचनसे 'मरजा, जलजा' आदि शब्द कहते हैं, यहाँ तक कि यदि हम उसके साथ लाड़–प्यार भी करते हैं तो कहते हैं–ला तेरा गला काट दूँ, आ तेरा पेट फोड़ दूँ–या कुएमें ढकेल दूँ' इत्यादि।

प्राचीन कालमें कन्या–विवाहके समय बड़े बड़े वीरोंकी सेना लेकर वरके चढ़ आने और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कन्याको भेटमें देनेके रिवाजका इतना चिन्ह अब भी मौजूद है कि लड़केवाला बरातमें अपने सब सम्बन्धियों और मित्रोंको इकट्ठा करके एक भारी लाव-लशकरसे बेटीवाले पर चढ़ाई करता है और जब बरात बेटी वालेके ग्रामके पास पहुँच जाती है, तब बेटीवाला अपने सम्बन्धियों, मित्रों और ग्रामके मुखियोंको साथ लेकर नकदी, जेवर और घोड़ा-घोड़ी आदि भेंटकी वस्तुयें लेकर हाजिर होता है और नम्रतापूर्वक आगन्तुकोंको शान्त करता हुआ अपनी बेटीका डोला उनके हवाले करता है। जब तक बरात उसके ग्राममें ठहरती है, तब तक वह अपनी शक्तिके बाहर उनकी सेवा करता है—बात बातमें अपनी नम्रता दिखाता है। परंतु बराती उस पर ऐसी हुकूमत करते हैं—ऐसी लूट मचाते हैं मानो उन्होंने उस ग्रामको लड़ाईमें जीता हो।

पुरुषोंकी स्वार्थवासना इतनेसे ही तृप्त नहीं हुई—उनको स्त्रियोंका खैड़ाका खैड़ा जमा करने पर भी संतोष नहीं हुआ, बल्कि इससे उनकी कामवासना यहाँ तक बढ़गई कि विवाहिता स्त्रियोंके सिवा उन्होंने अन्य बाजारु वा ग्राम्य-स्त्रियोंसे इन्द्रियतृप्ति करना अनुचित—पापजनक नहीं समझा। पुरुष बेधड़क रंडियोंका नाच कराते हैं, बाप बेटा और बाबा पोता सब इकट्ठे होकर उन रंडियोंकी ओर बुरी दृष्टिसे देखते हैं और असंकोच भावसे उनसे हँसी—मजाक करते हैं। पुरुषोंने इस घृणित शौकको यहाँ तक महत्त्व दिया है, कि वे जब किसी स्त्रीको विवाह करके लाना चाहते हैं, और जिसके लिए बिरादरीके मुखियोंको साथ लेजाना आवश्यक होता है, उस समय भी रंडियोंको साथ ले जाना और उनका नाच कराना अत्यन्त आवश्यक समझते हैं, क्योंकि रंडियोंको साथ लिये बिना न तो बिरादरीके लोग बरातमें जानेको तैयार होते हैं और न बेटीवाला ही अपनी बेटी व्याहनेको राजी होता है। पुरुषोंकी यह कामवासना इतने अधम दर्जेको पहुँच गई है कि वे परस्त्रीसे अनुचित संबंध करके अपने काले मुँहको बुरा नहीं समझते हैं। उन्होंने अपने स्वार्थसे व्याहता स्त्रीको अर्धाङ्गिनी माननेके बदले उसे उसको इतने नीचे गिरा दिया है, कि कई एक तो इस अनुचित कृत्यको अपनी स्त्रीके सन्मुख करनेमें भी नहीं लजाते हैं और बेधड़क उसकी छातीपर मूंग दलते हैं। बेचारी स्त्रीकी इतनी मजाल कहाँ कि वह मुँह खोल सके और अपने पतिके इन दोषोंपर नाराजी प्रकट कर सके। परन्तु यदि ऐसे बदकार पुरुषोंकी स्त्रियाँ भी यदि अकस्मात पराये पुरुषकी तरफ देख भी लें तो वही पुरुष उनको जानसे मार डालनेके योग्य ठहराते हैं और गैरतमें आकर कुछका कुछ कर डालते हैं। मानो कुशीलका दोष स्त्रियोंहीके लिए है—पुरुष उससे बिलकुल बरी हैं। यदि इस बातपर अधिक विचार किया जाय तो उनका यह ढँग उनके विचारके अनुसार ठीक ही मालूम होता है; क्योंकि यदि उनको धर्मका खयाल होता तो वे आप ही कुशीलमें क्यों फँसते और यह सिद्धान्त ही क्यों करते कि पुरुषोंके लिए कुशीलका दोष ही नहीं है। अतएव वह धर्मके विचारसे स्त्रीको दोषी नहीं ठहराते, बल्कि वह इस कारणसे दोषी ठहराते हैं कि वह उनकी धन-सम्पति है—उनकी दासी और गुलाम है। इसी कारण किसी स्त्रीका पराये पुरुषकी ओर देखना विद्रोह है—पुरुषके आधिकारके बहार जाना है और इसी कारण स्त्रीको यह अधिकार नहीं है, कि पुरुषको परस्त्रीसे अनुचित संबंध करनेसे रोके। क्योंकि अन्य—स्त्रियोंके साथ सम्बन्ध करनेसे पुरुष अपनी सम्पत्तिका अधिक विस्तार करता है। यदि पुरुष धर्मका दावा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करके स्त्रीको दोषी ठहराता है तो कहना होगा कि उसने अपने स्वार्थसे धर्म सिद्धान्तको भी बदल डाला है और अपनी इच्छानुसार मन-घड़न्त सिद्धान्त बना लिये हैं, क्योंकि धर्मशास्त्रोंमें तो कुशीलका दोष स्त्री–पुरुष दोनोंके वास्ते समान ही लिखा है। पुरुषको अधिक बाध्य करनेके लिए 'स्वदारासंतोष-व्रत' का उपदेश दिया है। जैनधर्मकी कर्मफिलासोफी तो पुरुषोंको विवाहिता स्त्री भी एकसे अधिक रखनेपर–कामलालसा अधिक होनेके कारण पापी ठहराये बिना नहीं छोड़ती है। कुछ भी हो स्वार्थान्ध पुरुषोंने धर्मके सिद्धान्तोंसे आँखें मीचकर मनमानी करनेके लिए कमर करती है। अस्तु, पुरुषोंका स्वार्थ और स्त्रियोंकी निर्बलता उनकी आँखें नहीं खुलने देती है।

अब विचारनेकी बात है कि जहाँ स्वार्थने इतना अंधकार कर रक्खा हो, जहाँ स्त्रियाँ दासी और पशुओंसे भी तुच्छ समझी जाती हों–वहाँ अनमेल विवाह होना कौन आश्चर्यकी बात है? जहाँ स्त्रियाँ अर्धाङ्गिनी समझी जाती हैं, वहाँ विवाहके असली उद्देश्यकी पूर्ति करनेके लिए विवाह किया जाता है। वहाँ न तो अनमेल विवाह ही होता है और न एकसे अधिक स्त्री विवाही जाती है। वहीं गृहस्थको सच्चा सुख मिलता है और वहीं लोग अपने देशकी और अपनी जातिकी भलाई कर सकते हैं। यदि स्त्रीको विवाह कर लाना उसको अर्द्धाङ्गिनी बनानेके वास्ते नहीं है, बल्कि दासी वा पशुओंकी तरह उनका संग्रह करनेके लिए है तो फिर इस बातके जाँचनेकी जरूरत ही क्या है कि दोनोंका मेल ठीक है या नहीं। छोटे छोटे बच्चोंकी दासियाँ क्या बूढ़ी स्त्रियाँ नहीं होती हैं? और इसी तरह क्या बूढ़े बूढ़े मनुष्योंके यहाँ छोटी छोटी लड़कियाँ दासीका काम नहीं कर सकतीं? ऐसे ही विचारोंसे इस देशमें अनमेल विवाह योग्य समझे गये हैं। परंतु इसके साथ यह एक विचार भी हिन्दुस्थानमें प्रचलित है कि जो स्त्री अपने पतिके सामने मरती है वह भाग्यवान् है और जो पतिके पीछे जीवित रहकर विधवा बनती है वह अत्यन्त अभागी है। ऐसी अवस्थामें जो स्त्री अपनेसे छोटे पतिके साथ विवाही जाती है वह तो भाग्यवान् है ही, क्योंकि उसकी आयु पतिकी आयुसे अधिक होनेके कारण व्यवहारमें यही आशा की जा सकती है कि वह पतिसे पहले ही चल देगी। इसी कारण यह कहावत प्रसिद्ध हुई है–"बड़ी बहू बड़े भाग छोटी बहू छोटे भाग।" परन्तु जहाँ दशवर्षकी बालिका सत्तर वर्षके बूढ़ेके साथ व्याही जाती हो वहाँ तो उसके विधवा होनेकी इन्तजारीमें घड़ियाँ ही गिनना पड़ेंगी। इस कारण उसके अभागिनी होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है। परन्तु ऐसा वहीं होता है जहाँ लड़कीके मा बाप अपने जैसे दामादोंसे–जो इस दुनियाके कुछ दिनके ही मेहमान हैं–अपनी कन्याके तौलसे भी अधिक रुपया गिना लेते हैं; और जहाँ वह बूढ़ा भी केवल इसी उद्देश्यसे इतने रुपये खर्च करता है कि वह अपने मरनेपर कोई चूडियाँ फोड़नेवाली–उसकी विधवा कहलानेवाली छोड़ जावे। अतएव अपने मा–बापका घर रुपयोंसे भर देने, और अपने पतिकी इच्छाको पूरी करनेके लिए विधवा बनकर घर बैठी रहनेके कारण वह भी एक तरहसे भाग्यवान् ही है।

भारतवर्षकी जो जो जातियाँ अपनेको उच्च समझकर धरती पर पैर नहीं रखना चाहती और जो अन्य जातियोंको बहुत ही तिरस्कारकी दृष्टिसे देखती हैं, उनमें भी कन्याओंको बेचनेसे बहुतसे बेटीवाले मालदार होते रहते हैं और बहुतसे कबरमें पैर लटकानेवाले बूढोंके घर भी उनकी पोतीके बराबर छोटी पत्नियोंके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आने और विधवा होनेसे पवित्र होते रहते हैं। ये उच्चजातिके लोग कन्या-विक्रयको तो बेशक कुछ ऐबकी बात मानते हैं और उसके दूर करनेके लिए कुछ झूठमूठ कोशिश भी दिखाते हैं, यहाँतक कि कभी कभी पंचायतमें ऐसे प्रस्ताव भी पास कर देते हैं कि कन्या-विक्रय करनेवाले जातिच्युत कर दिये जावेंगे, परन्तु वे अमलमें नहीं लाये जाते हैं। क्योंकि पंचायतके सर्दारोंको यह बहुत आसान बहाना हाथ लगा हुआ है कि बेटी बेचनेवाले बहुत ही गुप्तरीतिसे रुपया गिना लेते हैं। अतएव यह सिद्ध नहीं होने पाता है कि अमुक व्यक्तिने बेटीके बदले थैली ली है या नहीं। यदि अधिक सन्देह होनेपर पंचायतमें उससे पूछा जाय तो वह अपनी निर्दोषताके विषयमें कसम खानेके अतिरिक्त मंदिरमें जाकर और भगवान्की मूर्तिको हाथ लगाकर यह कहनेको तैयार होता है कि मैं तो बेटीके गाँवके कुएका पानी भी नहीं पीता।

हमारे उच्चजाति भाई वास्तवमें कन्या-विक्रयको चाहे भला समझते हों चाहे बुरा; पर इसमें तो कुछ सन्देह नहीं है कि वे साठ साठ और सत्तर सत्तर वर्षके बूढ़ेका विवाह आठ आठ–दस दस वर्षकी कन्याके साथ होनेको जरा भी बुरा नहीं समझते हैं। बेटीका बेचना बहुत गुप्त रीतिसे होता है, उसका कुछ सबूत नहीं मिलता—यह सब सही है; पर उसका जो मूल कारण है वह दुनिया भरके सामने सूर्यके समान चमकता है। बगुलेके परोंके समान बिल्कुल सफेद बालोंवाला अमुक बूढा जिसके न मुँहमें दाँत हैं और न पेटमें आँत; और जिसको यमलोक लेजानेवाले यमदूत घड़ियाँ गिन रहे हैं—अपनी पोती और परपोती के समान नन्हीं बच्चीसे विवाह करानेके लिए सिरपर मौर बाँधे और मुँह पर सहरा लटकाये दूलह बना है, परन्तु हमने तो आजतक नहीं सुना कि किसी जगहकी बिरादरीने ऐसे पुरुषकी बरातमें जानेसे और मूछों पर ताव देकर लड्डू खानेसे कभी इन्कार किया हो। ऐसे विवाहोंमें कोई कुछ भी रोक टोक नहीं करता है, बल्कि दोनों तरफके बिरादरी वाले बड़ी खुशी और चावके साथ शुभलग्न और शुभमुहूर्तमें शुभजोड़ीको मिला देते हैं—खूब बधाई गाई जाती है और 'अहिंसा परमोधर्मः' का आकाश तक ऊँचा झंडा उड़ाकर और अपनेको दयाधर्मका पालनेवाला मानकर मदसे अंगमें फूले नहीं समाते हैं। यही नहीं बरन वे संसारके सभी मनुष्योंको अपनेसे नीचा मानकर आनंदसे आयु व्यतीत करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बम्बई शहर और जैन-जनता।

श्वेताम्बर जैन कान्फरेंसने एक कमेटी इस लिए बनाई थी कि वह बम्बई शहरके जैनोंकी मृत्युसंख्यापर विचार करे। हर्षका विषय है कि कमेटीने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर दी और वह इतनी महत्त्वकी है कि प्रत्येक जैनको— कमसे कम बम्बई निवासियोंको तो अवश्य ही पढ़ना चाहिए। यदि सारे भारतके जैनोंकी जनसंख्यापर विचार करनेके लिए भी एक ऐसी ही कमेटी बनाई जाय, तो उससे बहुत लाभ हो; हम जान सकें कि हमारी संख्या दरअसल घट क्यों रही है।

बम्बई शहरमें रहनेवाले जैनोंकी संख्या सन् १९०१ की मनुष्यगणनाके अनुसार १४२४८ थी, जो १९११ में बढ़कर २०४६० हो गई। अर्थात् यहाँ १० वर्षमें ६२१२ की वृद्धि हुई। पर इस बढ़तीका कारण यह है कि बाहरके लोग व्यापारादिके लिए आकर यहाँ बस गये हैं—कुछ यहाँकी पैदायशके कारण वृद्धि नहीं हुई। इसका पता तब लगता है जब हम यहाँकी मृत्युसंख्या पर विचार करते हैं। बंबईमें पारसियोंकी जनसंख्या ५०९३१ है। गत चार वर्षोंमें इस जातिके लोगोंकी प्रत्येक हजारके पीछे २२–२३ मोतें हुई हैं, परतु इन्हीं चार वर्षोंमें जैनोंकी मृत्युसंख्या प्रति हजार ६० से लेकर ७० तक हुई है! अर्थात् हमारी मृत्यु पारसियोंकी अपेक्षा लगभग तीन गुणी होती है! सारे बम्बई शहरकी मृत्युका परिमाण प्रति हजार ४० और सारे भारतका ३४ है! ग्रेटब्रिटन आदि देशोंमें तो यह परिमाण १५ से अधिक कभी नहीं होता!

बम्बईमें जैनस्त्रियोंकी संख्या ५८६५ है, शेष १५३९५ पुरुष हैं, अर्थात् पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ लगभग तिहाई या प्रतिशत ३३ हैं; परन्तु उनकी मृत्यु गत चौदह वर्षोंमें प्रतिशत ३६ ते ४० तक हुई है। अर्थात् जैनियोंकी तमाम मृत्युसंख्या यदि १०० हुई है। तो उनमें स्त्रियोंकी ४० और पुरुषोंकी ६० हुई है। अर्थात् जैन पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ और भी अधिक मरती हैं। और बच्चोंकी मृत्यु तो उनसे भी अधिक है।

जिन सब रोगोंसे बम्बईके जैनोंकी मृत्यु होती है उनमें चार मुख्य हैं—१ प्लेग, फेंफड़ेके रोग, ३ श्वासरोग और ४ जुदा जुदा तरहके ज्वर तथा कमजोरी आदि। गत चौदह वर्षोंमें प्रतिशत ६० से लेकर ७५ तक आदमी इन्हीं चार रोगोंसे मरे हैं।

कमेटीके सज्जन—जिनमें दो डाक्टर हैं—जैनोंकी अधिक मृत्यु संख्याके नीचे लिखे कारण बतलाते हैं।

१ लगभग १२५७० जैन शहरके सघन और गन्दे मुहल्लोंमें रहते हैं और उनमेंसे अधिकांश लोग इकहरी, छोटी, यथेष्ट हवा और प्रकाशसे रहित; सस्ते किरायेकी कोठरियोंमें रहते हैं। जिस जगहमें रसोई बनती है, उसी जगहमें रातको सो जाते हैं। अतः स्वच्छ वायु और प्रकाशके बिना रोगोंके शिकार बन जाते हैं।

२ स्त्रियोंका अधिकांश भाग प्रसूतिके समयकी बीमारियोंसे मृत्युके मुखमें पड़ता है। कुछ तो उसी समय मर जाती हैं और कुछ तरह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तरहके गर्भ सम्बंन्धी रोगोंसे आक्रान्त होकर दुःख भोगते भोगते बरसों बाद मरती हैं । इसका कारण यथेष्ट आरोग्यप्रद स्थानका और सेवा-शुश्रूषाका अभाव जान पड़ता है। यहाँ 'रुक्मणि-प्रसूतिगृह' नामकी एक संस्था है । उसमें जिन स्त्रियोंकी प्रसूति होती है उनमेंसे प्रतिशत केवल २ स्त्रियाँ मरती हैं; परन्तु जो स्त्रियाँ अपने घरोंमें ही बच्चा जनती हैं उनमेंसे प्रतिशत ४० मर जाती हैं !

३ लोग आरोग्यताके और शरीररक्षाके नियमोंको बहुत कम जानते हैं । कसरत करने और शुद्ध हवामें रहनेकी ओर लोगोंका ध्यान नहीं है ।

४ बाल्यविवाह वृद्धविवाह आदि कुरीतियाँ भी जनसंख्याके ह्रासमें बहुत सहायता करती हैं । इन दोनोंसे विधवाओंकी संख्या बढ़ती है । इसके सिवाय छोटी छोटी तेरह तेरह-चौदह चौदह वर्षकी लड़कियाँ गर्भधारण कर लेती हैं । इसका फल यह होता है कि प्रसूतिके समय या तो वे मरणशरण हो जाती हैं या हमेशाके लिए बीमार बन जाती हैं ।

इसके लिए कई उपाय भी बतलाये गये हैं—१ सस्ते किरायेकी स्वच्छ वायु और प्रकाश वाली कोठरियाँ बनाई जायँ जिससे गरीब लोग भी अच्छे आरोग्यप्रद स्थानोंमें रह सकें, २ दो चार अच्छी व्यवस्थावाले 'जैन-प्रसूतिगृह' खोले जायँ, जिनमें साधारण लोग अपनी स्त्रियोंको भेजकर उनकी रक्षा कर सकें । ३ बम्बईसे बारहके आरोग्यप्रद स्थानोंमें जैन भाइयोंके लिए आरोग्य-भवन खोलना, जिनमें लोग बीमारी आदिके समय जाकर रह सकें और आराम पासकें । ४ आरोग्यताके नियमोंका ज्ञान-विविध उपायोंसे फैलाया जाय । ५ जैन हास्पिटल और दवाखानें खोले जायँ, जहाँ बिनामूल्य दवा दी जाय और रोगियोंकी परिचर्या भी की जाय । ६ बाल्यविवाह आदि कुरीतियाँ बन्द की जायँ ।

इस लेखपर बम्बईके ही नहीं और और शहरोंके लोगोंको भी ध्यान देना चाहिए । और वहाँकी मृत्युसंख्या आदिके जाननेका यत्न करना चाहिए । रिपोर्टमें बतलाया गया है कि जैनोंका बहुत बड़ा भाग शहरोंमें रहता है । १०० मेंसे लगभग ३३ जैन शहरोंके रहने वाले हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रोफेसर साहबका पत्र।

SRIJUT *Nathuram Premi*,

Editor, JAINHITAISHI.

Sir,

In the February and March Nos. of the 'Jain-Hitaishi', Shrijut Jugalkishore Muktar of Deobund has requested me to clear up the uncertainty with respect to the actual date of the consecration of the image of Gomatishwar. In this connection I beg to state that as the Kalki Era begins from 1000 Bîr Nirvân Samvat and as it is written in the Vâhuvali Charitra that the image of Gomotishwar was consecrated in the year 600 of the Kalki era, the actual date of the establishment of the image is 1600 Bîr Nirvâna Samvat or 1074 A. D. This date is in accordance with the incriptions published in Epigrahia Indica &c. which contain the names of Rajamalla and Chamundaraya. This is why I wrote in my article on Gomati Sâra that Chamundaraya and Nemichanda flourished in the 11th century A. D.

As about the line "This corresponds to Bikrama Samvat 735" Srijut Jugalkishore is right in saying that this is a mistake. This is not my computation Pandit Jabaharlal Sastri in his introduction to Vrihadaranya Sangraha writes "यहाँ कल्की व कलिके संवत्से शकके संवत्को ग्रहण करना चाहिए। इसके अनुसार कल्की (शक) से संवत् ६०० (वि० सं० ७३५) में"...इत्यादि। On this basis I wrote the line in question, but in a footnote in my original article pointed out the mistake of Pandit Javaharlal. That I did not agree with this will appear from tho subsequent statement made by me that Nemichandra flourished in the 11th century A. D. Unfortunately the footnote was left out by inadvertence when the article was printed in the "Digambar Jain" and this gave rise to the doubts in the minds of readers. But now I hope this statement will remove all doubts.

I shall be much obliged if you would kindly publish a Hindi translation of the above extract in the coming number of Jain Hitaishi and oblige

yours faithfully,

13-4-16. *Saratchandra ghoshal*,

15, Nimtalla ghat street,

Calcutta.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपरिलिखित अंगरेजी पत्रका अनुवाद–

श्रीयुत नाथूराम प्रेमी

सम्पादक, जैनहितैषी.

महाशय,

'जैनहितैषी' के (गत) फरवरी, और मार्चके अंकमें, देवबन्द निवासी श्रीयुत जुगलकिशोर मुख्तारने मुझसे उस भ्रमको साफ कर देनेकी प्रार्थना की है जो कि गोमटेश्वरकी मूर्तिके असली प्रतिष्ठा–समयसे सम्बंध रखता है। इस विषयमें मेरा यह निवेदन है कि चूँकि वीरनिर्वाण संवत् १००० से कल्की संवत् शुरू होता है और बाहुबलि चरित्रमें यह लिखा है कि गोमटेश्वरकी मूर्ति कल्की संवत् ६०० में प्रतिष्ठित की गई थी, इस लिए मूर्तिके स्थापित किये जानेका असली समय वीरनिर्वाण संवत् १६०० या ईसवी सन् १०७४ है। यह समय एपीग्रेफिका इण्डिका आदिमें प्रकाशित उन शिला लेखोंके अनुकूल है जिनमें राजमल्ल और चामुण्डरायके नाम पाये जाते हैं। यही कारण है जिससे मैंने अपने गोम्मटसारपर लिखे गये लेखमें यह लिखा था कि, **चामुण्डराय और नेमिचन्द्र ईसाकी ११ वीं शताब्दीमें हुए हैं।**

रही इस पंक्तिकी बात कि "यह कल्की संवत् ६०० विक्रम संवत् ७३५ के बराबर है।" श्रीयुत जुगलकिशोरजीका इसे एक भ्रम बतलाना सत्य है। यह मेरी गणना नहीं है। पं. जवाहरलाल शास्त्रीने अपनी बृहद्द्रव्यसंग्रहकी प्रस्तावनामें लिखा है:—

"यहाँ कल्की व कलिके संवत्से शकके संवत्को ग्रहण करना चाहिए।" "इसके अनुसार कल्की (शक)के संवत् ६०० (वि. सं. ७३५)में......" इत्यादि।

इसी आधारपर मैंने उक्त विवादस्थ पंक्तिको लिखा था; साथ ही एक फुटनोटमें जो कि मेरे असली निबंधमें लगा था, मैंने पं. जवाहरलालकी इस गलतीको प्रगट कर दिया था। यह बात कि मैं इस गलतीसे सहमत नहीं हुआ मेरे बादके इस कथनसे प्रगट होती है कि **नेमिचंद्र ईसाकी ११ वीं शताब्दीमें हुए हैं**। दुर्भाग्यसे वह फुटनोट उक्त निबंधके साथ "दिगम्बर जैन" में छपते समय प्रमादवश छूट गया और यही पाठकोंके हृदयोंमें भ्रमोत्पादनका कारण हुआ। परन्तु अब मैं आशा करता हूँ कि मेरे इस कथनसे सब भ्रम दूर हो जायगा।

यदि आप मेरे उपर्युक्त नोटका हिन्दी अनुवाद जैनहितैषीके आगामी अंकमें प्रकाशित करनेकी कृपा करेंगे तो मैं इसके लिए आपका बहुत अनुगृहीत होऊँगा।

ता. १३–४–१६ } **आपका विश्वासपात्र–**
शरच्चन्द्र घोशाल।

प्रत्युत्तर।

ऊपरका यह नोट लिखकर, श्रीमान् प्रोफेसर शरच्चंद्रजी घोशालने अपने अंग्रेजी लेखसे उत्पन्न होनेवाले भ्रमको दूर करनेके प्रयत्न द्वारा जो उदारता प्रगटकी है वह निःसन्देह प्रशंसनीय है। आपके इस नोटसे यह बात तो साफ़ हो जाती है कि 'कल्की संवत् ६००' विक्रम संवत् ७३५ के बराबर नहीं है और इस लिए साधारण जनताका इससे एक भ्रम दूर हो जाता है। परन्तु साथ ही एक नया भ्रम और पैदा होता है और दूसरा भ्रम बदस्तूर क़ायम रहता है। नया भ्रम यह पैदा होता है कि प्रोफ़ेसर साहबने इस नोटमें हेतुरूपसे यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रगट किया है कि हमने अपने उक्त लेखमें चामुण्डराय और नेमिचन्द्रका समय **ईसाकी ११ वीँ शताब्दी** लिखा है। परन्तु 'दिगम्बरजैन' के गत खास अंकमें प्रकाशित आपके उक्त लेखको देखनेसे ऐसा मालूम नहीं होता। उसमें साफ़ तौरपर दोनोंका समय **ईसाकी १० वीँ शताब्दी** लिखा है। उसीका मैंने अपने पूर्वके नोटमें उल्लेख भी किया था। प्रोफेसर साहबने उसका कोई प्रतिवाद नहीं किया। इससे आपके दोनों कथनोंमें सर्वसाधारणको भ्रममें डालनेवाला पूर्वापर विरोध पाया जाता है और लगभग एक शताब्दीका अन्तर बैठता है। चामुण्डरायके विषयमें अभीतक जो कुछ प्रमाण उपलब्ध हुए हैं उनसे चामुण्डरायका समय ईसाकी **१० वीँ** शताब्दी ही निश्चित होता है; ११ वीँ शताब्दीका उत्तरार्ध या ईसवी सन् १०७४ नहीं होता। मिस्टर राइससाहबने अपनी 'इन्स्क्रिप्शन्सऐट् श्रवणबेल्गोल' नामक पुस्तककी प्रस्तावनामें लिखा है कि, चामुण्डरायने एक पुराण बनाया है जिसमें उसके बनकर समाप्त होनेका समय शक संवत् ९०० (ई. सन् ९७८) दिया है। श्रीयुत पं. नाथूरामजी प्रेमी, चन्द्रप्रभचरितमें 'वीरनन्दि' का परिचय देते हुए, रत्नकविके 'पुराणतिलक' नामक ग्रंथके आधारपर, जो कि शक संवत् ९१५ (ई. सन ९९३) में बनकर समाप्त हुआ है, लिखते हैं कि उस ग्रंथमें कविने अपने ऊपर चामुण्डरायकी विशेष कृपा होनेका उल्लेख किया है। इस प्रकारके प्रमाणोंके मौजूद होते हुए, प्रोफेसर साहबका चामुण्डरायको ईसाकी **११ वीं** शताब्दीके उत्तरार्धमें बतलाना और उनके द्वारा ईसवी सन् १०७४ में गोम्मटेश्वरकी मूर्तिके प्रतिष्ठित किये जानेकी घोषणा करना, यह सब पाठकोंके हृदयोंमें बहुत हीं खटकता है। अतः 'एपीग्रेफिका एण्डिका' आदिके उन शिलालेखोंके प्रगट होनेकी जरूरत है जिनसे प्रोफेसर साहबके इस समयका समर्थन होता हो और जिनके आधार पर प्रोफेसर साहबने उक्त समयका निश्चय किया है। दूसरा भ्रम वही संवत्के नाम तथा संवत्में तिथि, दिन और नक्षत्रादिकके उन योगोंके घटित होनेसे सम्बन्ध रखता है, जो बाहुबलिचरित्रके उस पद्यमें वर्णन किये गये हैं, जिसमें कल्क्यब्द ६०० का उल्लेख है और जिसे मैंने अपने पहले नोटमें उद्धृत किया था। ईसवी सन् १०७४ विक्रम संवत् ११३१ और शक संवत् ९९६ के बराबर है। इन संवतोंमें किसी भी संवत्का नाम (उक्त पद्यमें वर्णित) '**विभव**' नहीं हो सकता। यदि बाहुबलिचरित्रके समय-सूचक इस कथनको और उसके आधारपर प्रोफ़ेसर साहबकी की हुई उक्त गणनाको सत्य माना जाय, तो ज्योतिषशास्त्रके उन नियमोंके प्रगट होनेकी भी ज़रूरत है जिनके आधार पर विक्रम संवत् ११३१ या शक संवत् ९९६ का नाम 'विभव' हो सके और जिनके आधारपर इस सालकी चैत्र शुक्ला पंचमीको **रविवार**का दिन, **सौभाग्य** योग और **हस्त** नक्षत्र सिद्ध किये जा सकें। निःसन्देह यह एक उलझन है, जिसके खुल जानेकी बहुत बड़ी जरूरत है। अतः प्रोफेसर साहबसे मेरा पुनः निवेदन है कि वे कृपाकर फिरसे इस विषयपर विचार करें और उक्त भ्रमोंको दूर करनेका कष्ट उठाएँ। यदि जाँचसे उन्हें अपने इस नोटका उक्त कथन भी सत्य प्रमाणित न होवे तो कृपया उसका भी प्रतिवाद निकाल देवें जिससे सर्वसाधारणमें आपके कथन–द्वारा किसी प्रकारका भ्रम न फैल सके। यहाँ मैं यह भी सूचित करदेना उचित समझता हूँ कि कहीं कहीं **कल्क्यब्द**' के स्थानमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'कल्यब्द' ऐसा पाठ भी पाया जाता है। राइस साहबने अपनी उक्त पुस्तककी प्रस्तावनामें 'कल्यब्द' का ही उल्लेख किया है। यदि यह पाठ सत्य हो तो यहाँ पर 'कलि' से अभिप्राय 'जैन कलि' का ही लिया जा सकता है जिसको जैनी लोग 'पंचमकाल' भी कहते हैं और जिसका प्रारंभ होना वीरनिर्वाणसे लगभग तीन वर्ष बाद माना जाता है। आशा है कि प्रोफेसर महोदय मेरे इस पुनः कष्ट देनेको क्षमा करते हुए यथार्थ वस्तुका निर्णय करने और करानेमें दत्तचित्त होंगे।

ता० ३-५-१६ निवेदकः—
जुगलकिशोर मुख्तार।

नेमिचरित काव्य।

काव्यमालाके द्वितीय गुच्छकमें यह काव्य नेमिदूतके नामसे प्रकाशित हुआ है। पर वास्तवमें इसका नाम 'नेमिचरित' मालूम होता है। स्वयं ग्रन्थकर्त्ताने इसके अन्तिम श्लोकमें जो 'नेमेश्चारितविशदं' पद दिया है, उससे भी इसका यही नाम प्रतीत होता है। यह 'मेघदूत' के ढँगका काव्य है और मेघदूतके ही चरण लेकर इसकी रचना की गई है। शायद इसीलिए इसे नेमिदूत नाम मिल गया होगा। परन्तु यथार्थमें इसमें दूतपना कुछ भी नहीं है। न इसमें नेमिनाथ दूत बनाये गये हैं और न उनके लिए कोई दूसरा दूत बनाया गया है। राजीमतीने नेमिभगवान्‌को संसारासक्त करनेके लिए जो जो प्रयत्न किये हैं, जो जो अनुनय विनय किये हैं और जो जो विरहव्यथायें सुनाई हैं उन्हींका वर्णन करके यह हृदयद्रावक काव्य बनाया गया है। अन्तमें राजीमतीके सारे प्रयत्न निष्फल हुए। नेमिनाथने उसे संसारका स्वरूप समझाया विषयभोगोंका परिणाम दिखलाया, मानवजन्मकी सार्थकता बतलाई और इसका फल यह हुआ कि राजीमती स्वयं देहभोगोंसे उदास होकर साध्वी हो गई! यदि अन्तके दो श्लोकोंमें ये पिछली बातें न कही गई होतीं, तो इस काव्यका 'राजीमती-विप्रलम्भ' या 'राजीमतीविलाप' अथवा ऐसा ही और कोई नाम अन्वर्थक होता; परन्तु अन्तिम श्लोकोंसे इसमें नेमिनाथको प्रधानता प्राप्त हो गई है—राजीमतीके सारे विरहविलाप उनके अटल निश्चय और उच्च चरित्रके पोषक हो गये हैं, इस लिए इसमें सन्देह नहीं कि इसका 'नेमिचरित' नाम बहुत सोच समझकर रक्खा गया है।

इस काव्यकी रचना बहुत सुन्दर और भावपूर्ण है। शब्दसौष्ठव भी अच्छा है। परन्तु जगह जगह क्लिष्टता आ गई है। दूरान्वयता बहुत है, प्रयत्न करनेसे विशेष परिश्रमसे कविका हृद्गत आशय समझमें आता है। पर इसमें कविका दोष नहीं—उसे लाचार होकर ऐसा करना पड़ा है। कविकुलगुरु कालिदासके सुप्रसिद्ध काव्य मेघदूतके प्रत्येक श्लोकके चौथे चरणको अपने प्रत्येक श्लोकका चौथा चरण मानकर कविने इस काव्यकी रचना की है। ऐसी दशामें-चौथे चरणोंके शब्दों, वाक्यों और उनके आशयोंकी अधीनतामें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पढ़कर कवि और करता ही क्या ? अपने हृद्गत भावोंको दूसरे कविके शब्दों, वाक्यों और आशयोंके द्वारा रुद्ध हुए मार्गमेंसे प्रगट करनेके सिवा उसे कोई गति ही न थी। ऐसी परिस्थितिमें काव्यमें क्लिष्टता आना ही चाहिए। किन्तु इस पराधीनकार्यमें भी कविने जो काव्यकौशल दिखलाया है और जो मार्मिकता दिखलाई है, उससे अनुमान हो सकता है कि यदि कवि अपने भावोंको स्वच्छन्दतापूर्वक प्रकट करनेका—अपनी भावधाराको बिना बाधाके बहानेका मौका पाता, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह काव्य और भी ऊँचे दर्जेका काव्य बन जाता।

इस काव्यके बनानेमें कविको कितना परिश्रम करना पड़ा होगा इसका अनुमान पाठक तब कर सकेंगे, जब मेघदूतको सामने रखकर इस काव्यको पढ़ेंगे और मेघदूतके चौथे चरणोंके मूल भावोंके साथ इसके चौथे चरणोंके भावोंको मिलावेंगे। मेरी समझमें यह काम वैसा ही कठिन है जैसा कि आमके एक पौधेको काटकर उसकी पींढ़में दूसरे पौधेकी कमलको जोड़ देना और दोनोंके शरीरको, रसको और चेतना शक्तिको एक कर देना। पूरे काव्यका पाठ करके हम देखते हैं कि कविने इस कठिन कार्यमें अच्छी सफलता प्राप्त की है।

इस काव्यके कर्त्ताका नाम विक्रम है। वह साङ्गणका पुत्र था। नेमिचरितके अन्तिम श्लोकसे कविका केवल इतना ही परिचय मिलता है। वह किस समय हुआ, किस वंशमें हुआ, किस स्थानमें उसका निवास था, उसने और किन किन ग्रन्थोंकी रचना की, इत्यादि बातोंका कुछ भी पता नहीं चलता। यदि उसने अपने किसी दूसरे ग्रन्थमें अपना परिचय दिया हो अथवा उसके समकालीन या पिछले किसी ग्रन्थमें उसका उल्लेख हो, तो इस समय तक ऐसे किसी ग्रन्थका हमें दर्शन नहीं हुआ। संस्कृतकी रचनाशैलीसे अथवा काव्यमें वर्णन की हुई बातोंसे भी कविके समयका थोड़ा बहुत अनुमान किया जा सकता है; परन्तु न तो इतनी हमारी शक्ति ही है और न हमें इतना अवकाश ही है कि इस कठिन कार्यको हम कर सकें।

विक्रमकवि जैनधर्मानुयायी था, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वह दिगम्बर सम्प्रदायका माननेवाला था या श्वेताम्बर सम्प्रदायका। काव्यवर्णित बातोंसे भी इस बातका निश्चय न हो सका। क्योंकि इसमें जो कुछ कहा गया है वह साम्प्रदायिक मतभेदकी सीमासे बाहर है। गुजरातीके एक ऋषभदास नामके कवि हो गये हैं। वे श्वेताम्बर थे। उन्होंने अपने पिताका नाम 'संघवी सांगण' लिखा है। यदि उन्हीं सांगणके ये भी पुत्र हैं तो फिर इन्हें भी श्वेताम्बर मानना पड़ेगा। पर यह जाननेकी कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं है। दोनों ही सम्प्रदायके काव्यप्रेमी जन, अपना अपना समझकर इसके रसका आस्वादन कर सकते हैं।

कविका क्षेत्रज्ञान।

मेघदूतके यक्षने अपनी प्रेयसीके पास सन्देशा भेजनेके लिए बादलोंको मार्ग बतलाया है कि तुम अमुक अमुक स्थानोंसे होकर जाओगे, तो उसके समीप पहुँच जाओगे। इस मार्गसूचनमें कालिदासने अपने भूगोलज्ञानका विलक्षण परिचय दिया है। विद्वानोंने निश्चय किया है कि उनके वर्णनमें देशस्थानसम्बन्धी कोई भूल नहीं है, मानो कालिदासने स्वयं पर्यटन करके उक्त सब स्थान और नगरादि देखकर अपना काव्य लिखा था।

यही बात नेमिचरितमें भी है। पहले पहले जब हमने इस काव्यको पढ़ा और इसमें गोमती वेत्रवती आदि नदियोंके नाम देखे, तब हमें कविके क्षेत्रज्ञानके सम्बन्धमें अश्रद्धा हो गई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि ये नदियाँ जूनागढ़ और द्वारिकाके मार्गसे कई सौ कोस दूर हैं। परन्तु आगे जब हमने इस विषयकी छानबीन की और काठियावाड़का नकशा मँगाकर देखा, तब यह भ्रम दूर हो गया। हमें निश्चय हो गया कि कविकी इस विषयमें अच्छी जानकारी थी। यद्यपि उसका वर्णितक्षेत्र कालिदासके जितना बड़ा नहीं है; तो भी उसने उसमें पर्यटन किया है और ऐसा जान पड़ता है कि उसने स्वयं आँखों देखे हुए स्थानोंका वर्णन किया है। आश्चर्य नहीं कि कवि काठियावाड़का या उसके आसपासके हीं किसी स्थानका रहनेवाला हो।

नीचे हम कुछ स्थानोंके विषयमें खुलासा करना चाहते हैं जिनका वर्णन नेमिचरितमें आया है:—

१ **रामगिरि** (श्लोक १)—मेघदूतका रामगिरि अमरकंटक पर्वत है। परन्तु नेमिचरितके कर्त्ताने यह नाम गिरनारके लिए दिया है। ऊर्जयन्तिगिरि, रैवताद्रि आदि नाम तो गिरनारके जगह जगह मिलते हैं, पर यह नाम इस काव्यके अतिरिक्त कहीं नहीं देखा गया। संभव है कि कविने मेघदूतके चतुर्थचरणके वशवर्ती होकर—जिसमें कि 'रामगिरि' नाम पड़ा हुआ है—गिरनारका नाम रामगिरि न होनेपर भी अगत्या मान लिया हो और हमारे देशमें 'राम' शब्द इतना पूज्य है कि उसे किसी भी पूज्यतीर्थके लिए विशेषणरूपमें देना अनुचित भी नहीं कहा जा सकता।

२ **द्वारिका** (श्लोक १६)—गिरनारसे द्वारिका वायव्य-कोणमें है। इसलिए इस श्लोकमें कहा है कि द्वारिका जानेके लिए आपको उत्तरकी ओर जाकर फिर पश्चिमको जाना पड़ेगा।

३ **वेत्रवती** (श्लोक० २६)—यह द्वारिकाके प्राकारके पास है। ६४ वें श्लोकको गोमती और यह एक ही मालूम होती है। गोमती अब भी गोमती ही कहलाती है। वेत्रवती या तो इसका दूसरा नाम होगा, या उसमें बेत अधिक होंगे, इसलिए कविने उसका इस अन्वर्थक नामसे उल्लेख किया होगा। मेघदूतके जिस चरणकी यह समस्यापूर्ति है उसमें यह शब्द पड़ा हुआ है, इसलिए कवि ऐसा करनेके लिए विवश था। मेघदूतकी वेत्रवती मालवेकी 'बेतवा' नदी है।

४ **स्वर्णरेखा** (श्लोक ३२ और ४५)—यह नदी गिरनार पर्वतसे ही निकली है। छोटीसी पहाड़ी नदी है। इसकी रेतमें सोनेका बहुत सूक्ष्म अंश अब भी पाया जाता है। इसे लोग 'सुवरणा' कहते हैं। आगे चलकर यह नदी शायद किसी दूसरे नामसे प्रसिद्ध है।

५ **क्रीड़ापर्वत** (श्लो० २७)—'तुलसीश्याम' नामक पर्वतको लोग श्रीकृष्णका क्रीड़ा पर्वत कहते हैं। इसपर रूठी रुक्मणिकी मूर्ति बनी हुई है।

६ **वामनराजाकी नगरी** (श्लो० ३२)—इसको इस समय 'वणथली' कहते हैं। जो कि 'वामनस्थली' का अपभ्रंश है। यह जूनागढ़ स्टेटका एक कस्बा है और जूनागढ़से लगभग ५ कोसकी दूरीपर है। यहाँ वह स्थान भी बना है जहाँ विष्णुने तीन पैरसे पृथ्वी मापी थी।

७ **भद्रा** (श्लो० ५०)—यह नदी इस समय 'भादर' नामसे प्रसिद्ध है। यह जसदणके पासके पर्वतसे निकली और नवीबन्दरसे आगे अरब समुद्रमें मिली है। कविने इसके संगमस्थलका ही वर्णन किया है।

८ **पौर** (श्लो० ५१)—यह इस समय पोरबन्दरके नामसे प्रसिद्ध है। भद्रा (भादर) को पार करनेके बाद कविने इस नगरके मिलनेकी बात कही है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८ गन्धमादन और बेणुनपर्वत (श्लो० ५३ और ६१)—हालार और बरडो प्रान्तके बीचकी पर्वतश्रेणीको ' बरडो ' कहते हैं। संभवतः इसी श्रेणीके किन्हीं दो पर्वतोंका नाम गन्धमादन और बेणुन होगा। कविने इन दोनोंका वर्णन पोरबन्दरसे आगे चलकर किया है।

मेघदूतके मूल श्लोक ११५ हैं और १० श्लोक क्षेपक बतलाये जाते जाते हैं। पर इस काव्यमें क्षेपकसहित सभी श्लोकोंके चरणोंकी पूर्ति की गई है और इसीलिए इसमें १२५ श्लोक हैं। इससे मालूम होता है कि कविके समयमें उक्त क्षेपक श्लोक प्रचलित थे।

यह काव्य काव्यमालामें बहुत समय पहले छप चुका है। पं० उदयलालजी काशलीवालने इसका हिन्दी अनुवाद भी किया है जो गतवर्षमें छप चुका है। हो सका तो अगामी अंकमें इसके कुछ पद्योंकी बानगी भी दिखला दी जायगी।

विधवा बहू और सधवा सास।

[लेखक, कविवर पं० **गिरिधर शर्मा**।]

(गीत)

दृश्य कैसा दिखलाया राम।

(१)

तरुण बहू विधवा हो बैठी।
करती घुल घुल काम।
सज धज सास बनाती तिस पर
देती उरमें डाम ॥ दृश्य० ॥

(२)

बालवधू मनमार बिचारी-
बैठी मूँड़ मुड़ाय।
बाल बनाती लख लख दर्पण
सास हृदय हुलसाय ॥ दृश्य० ॥

(३)

हियमें जले जले बाहर भी-
बहू आगके पास।
जबाकुसुम बालोंमें डाले
चैन उड़ावे सास ॥ दृश्य० ॥

(४)

सोच सोच निज दशा बहू तो
दुबली हो हो जाय।
सास न जाने सोच सोच क्या
फूली अंग न माय ॥ दृश्य० ॥

(५)

स्वर्ग सिधारे प्राणनाथके-
बाला बड़ी मलीन।
पर, माँ, सुतके गये सजे यों,
है आश्चर्य नवीन ॥ दृश्य० ॥

(६)

असती है, या सौतेली माँ,
या दत्तककी माँय
विधवा पुत्रवधूके सन्मुख
जो सजती हरषाय ॥ दृश्य० ॥

(७)

राम करे क्या उसको गिरिधर
तू मत दे कुछ दोष।
भारत सामाजिक दोषोंपर
तू निकाल निज रोष ॥
कहे मन दृश्य दिखाया राम।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आकांक्षा ।

[लेखक, श्रीयुत **बाबू दयाचंद गोयलीय** ।]

जब मनुष्यको अपनी अज्ञानताका स्पष्ट रूपसे बोध हो जाता है तब उसके मनमें उन्नतिकी आकांक्षा उत्पन्न होती है जिसमें ऋषि मुनि लीन रहते हैं । आकांक्षासे मनुष्य भूमिसे स्वर्गमें, अज्ञान कूपसे ज्ञानमंदिरमें और अंधकारसे प्रकाशमें प्रवेश पाता है । इसके बिना अज्ञान अंधकूपमें पशुवत विषयोंमें उन्मत्त हुआ पड़ा रहता है—जहाँ किसी प्रकारकी भी उन्नति नहीं कर सकता ।

आकांक्षा और इच्छामें अंतर है । आकांक्षा दया, प्रेम सत्यता, पवित्रता आदि स्वर्गीय पदार्थोंके लिए होती है—जिनसे आत्मिक सुख मिलता है । इच्छा सांसारिक विषयवासनाओं और भोग विलासोंके लिए होती है—जिससे इंद्रियसुख मिलता है ।

जिस प्रकार पंखरहित पक्षी नहीं उड़ सकता, उसी प्रकार आकांक्षा रहित मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता और अपनी विषय वासनाओंपर विजय प्राप्त नहीं कर सकता। वह अपनी इंद्रियोंका दास बना रहता है और विषयोंके आधीन रहता है । उसके विचार स्थिर नहीं रहते। सांसारिक घटनाओंके परिवर्तनके साथ उसका मन भी चंचल चलायमान रहता है ।

जब मनुष्य आत्मोन्नतिकी अभिलाषा रखता है तब समझना चाहिए कि वह अपनी वर्तमान पतित दशासे असंतुष्ट है और उसमें परिवर्तन करना चाहता है । यह इस बातको भलीभाँति सूचित करता है कि वह बिषय वासनाओंकी गाढ़ निद्रासे सचेत हो गया है और उसे वास्तविक जीवनकी सत्यताका बोध हो गया है ।

आकांक्षासे सब चीजें सम्भव हो जाती हैं, उन्नतिमार्ग खुल जाता है और उच्चसे उच्च पद भी जिसकी कल्पनाकी जा सकती है प्राप्त हो जाता है । और तो क्या स्वयं मोक्षपद और केवलज्ञान भी प्राप्त हो जाता है । ऐसी कोई चीज नहीं है जिसका विचार किया जा सकता हो, परंतु जिसकी प्राप्ति न हो सकती हो ।

आकांक्षासे ईश्वरदर्शन होते हैं और आनंदके द्वार खुल जाते हैं । जब तक मनुष्यको सांसारिक लालसायें लगी रहती हैं वह आत्मोन्नतिकी आकांक्षा नहीं कर सकता, परंतु जब सांसारिक लालसायें कडुवी और दुःखरूप मालूम होने लगती हैं तब उसे आत्मोन्नतिका ध्यान होता है । जब सांसारिक भोग विलासोंसे मनुष्यका जी भर जाता है, उनसे रुचि हट जाती है, तब उसे स्वर्गीय सुख और आत्मानुभवके परमानंदकी अभिलाषा होती है । जब प्रत्यक्षमें पापसे दुःख मिलने लगता है तब पुण्य उपार्जन करनेकी मनुष्यमें इच्छा होती है । दुःख भोगने परसुखकी अभिलाषा होती है । वही अभिलाषा सच्ची अभिलाषा होती है । उसीसे मनुष्य स्वर्गसुख और परम्परा मोक्षआनंदका भोग कर सकता है । आत्मोन्नतिका अभिलाषी मनुष्य उस मार्गका अनुगामी है जिसके अंतमें शांतिका विशाल और अनुपम मंदिर है । यदि वह मार्गमें किसी जगह न रुके अथवा पीछे न हटे तो अवश्य एक दिन शांति-मंदिरमें प्रवेश कर लेगा । यदि वह सदा अपने मनमें आत्माके स्वरूपको बिचारता रहे, मोक्षका चिंतवन करता रहे, तो एक न एक दिन मोक्ष-महलमें पहुँच कर निजानंदको प्राप्त कर लेगा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जितनी मनुष्य आकांक्षा रखता है उतना ही उसे मिलता है। मनुष्य क्या हो सकता है इसका अनुमान उसकी आकांक्षाओंसे ही किया जा सकता है। किसी वस्तुकी ओर मनको लगाना, मानो पहले उसकी प्राप्तिको निर्दिष्ट करना है। जिस प्रकार मनुष्य छोटी छोटी चीजोंका ज्ञान और अनुभव प्राप्तकर सकता है उसी प्रकार बड़ी बड़ी चीजोंको प्राप्तकर सकता है। जैसे उसने मनुष्यत्वको प्राप्त किया है वैसे ही ईश्वरत्वको प्राप्त कर सकता है। मनको ईश्वरकी ओर लगाना इसीकी अत्यंत आवश्यकता है।

पवित्रता और अपवित्रता क्या वस्तुयें हैं? पवित्र विचारोंका नाम पवित्रता है और अपवित्र विचारोंका नाम अपवित्रता। जैसे मनुष्यके विचार हैं, पवित्र अथवा अपवित्र, उसीके अनुसार वह पवित्र वा अपवित्र कहलायगा। दूसरोंके विचारोंसे उसका कोई सम्बंध नहीं। हर एक अपने अपने विचारोंका उत्तरदाता है। यदि मनुष्य यह विचार करे कि मैं दूसरोंके कारण अथवा घटनाओंके कारण अथवा अपने पूर्वजोंके कारण अपवित्र हूँ तो यह उसकी भूल है। इस विचारसे वह अपनी भूलोंको दूर नहीं कर सकता, अपनी त्रुटियोंको कम नहीं कर सकता, किंतु ऐसे विचारोंसे सारी पवित्र आकांक्षायें नष्ट हो जाती हैं और मनुष्य इन विषय वासनाओंका दास बन जाता है।

जब मनुष्य इस बातका अनुभव करता है कि मुझमें जो जो त्रुटियाँ और अपवित्रतायें हैं उन्हें मैंने ही स्वयं उत्पन्न किया है और मैं ही उनका कर्ता और उत्तरदाता हूँ तब उसे उनपर जय प्राप्त करनेकी आकांक्षा होती है। और किस तरहसे उसे सफलता हो सकती है वह मार्ग भी उसे प्रगट हो जाता है। इस बातका भी उसे स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि मैं कहाँसे आया हूँ और कहाँ मुझे जाना है।

विषयोंमें उन्मत्त हुए मनुष्यके लिए कोई मार्ग सरल और निश्चित नहीं है। उसके आगे पीछे बिलकुल अंधकार है। वह क्षणिक सुखोंकी जोहमें रहता है और समझने और जाननेके लिए तनिक भी उद्योग नहीं करता। उसका मार्ग अव्यक्त, अनवस्थित, दुःखमय और कंटकमय होता है उसका हृदय शांतिसे कोसों दूर रहता है।

उच्च आकांक्षा रखने वाले मनुष्यके सामने स्वर्ग और मोक्षका मार्ग खुला रहता है। उसके पीछे सांसारिक इच्छाओंके पेचदार रस्ते बने रहते हैं जिनमें वह अबतक चक्कर खाता रहा है। अब वह अपने मनको ज्ञान प्राप्तिमें लगाये हुए आत्मबोधके लिए उद्योग करता है। उसका मार्ग साफ और निष्कंटक है और उसके हृदयमें शांति और आनंदका अनुभव होने लगा है।
सांसारिक इच्छा रखनेवाले मनुष्य छोटी छोटी वस्तुओंके पानेके लिए शक्ति भर उद्योग करते हैं जो बहुत शीघ्र नष्ट हो जाती हैं और जिनका चिन्ह तक भी शेष नहीं रहता। परंतु इसके विपरीत उच्च आकांक्षा रखने वाले मनुष्य धर्म, ज्ञान, बुद्धिसे सम्बन्ध रखने वाली बड़ी बड़ी चीजोंके हासिल करनेके लिए भरसक उद्योग करते हैं जो कभी नष्ट नहीं होती, किंतु मनुष्य जातिके उत्कर्ष और सुधारके लिए सदैव स्मारकरूप रहती हैं।

जिस प्रकार एक व्यापारी निरंतर उद्योग करते रहनेसे अपने व्यापारमें सफलता प्राप्त करता है, उसी प्रकार एक ज्ञानी-पुरुष उच्च आकांक्षा और उद्योगसे आत्मोन्नतिमें सफलता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त करता है। वह व्यापारमें दक्ष होता है, यह ज्ञानमें पूर्ण होता है।

जब मनुष्य अपने मनमें आकांक्षाका आनंद अनुभव करने लगता है तब उसका मन तुरंत शुद्ध हो जाता है और उसमेंसे अपवित्रताका मैल दूर हो जाता है। जब तक आकांक्षा रहती हैं, अपवित्रताका प्रवेश नहीं हो सकता। कारण कि एक ही समयमें पवित्र और अपवित्र दोनों प्रकारके विचार मनमें नहीं रह सकते। परंतु आकांक्षा पहले बहुत थोड़ी देरतक रहती है। थोड़ी देरके बाद फिर मन उसी पहली हालतमें आजाता है। अतएव आकांक्षाको उत्पन्न करनेके लिए निरंतर उद्योग करते रहना चाहिए।

पवित्र जीवनका प्रेमी अपने मनको प्रतिदिन उच्च आकांक्षाओंसे विशुद्ध करता रहता है। वह सबेरे प्रातःकाल उठता है और दृढ़ विचारों और अविश्रांत श्रमसे मनको प्रबल बनाता रहता है। उसे इस बातका ज्ञान रहता है कि मनकी ऐसी दशा है कि यह एक मिनटके लिए भी खाली नहीं रह सकता। यदि उच्च विचारों और पवित्र आकांक्षाओंसे इसकी रक्षा नहीं की जायगी, तो यह अवश्य नीच विचारों और कुत्सित इच्छाओंके आधीन हो जायगा।

जिस तरह प्रति दिनके अभ्याससे सांसारिक इच्छायें बढ़ती जाती हैं, उसी तरह आकांक्षायें भी बढ़ सकती हैं। यदि इनको मनमें स्थान नहीं दिया जायगा, तो इनके स्थानमें कुत्सित इच्छायें अपना अधिकार जमा लेंगीं। प्रतिदिन कुछ समयके लिए एकांतमें निर्जन स्थानमें—जहाँ तक हो सके खुली हवामें—जाकर अपने मनको चारों तरफसे हटाकर सम्पूर्ण शक्तियोंको एकत्र करना चाहिएं। ऐसा करनेसे मन आत्मीक क्षेत्रमें जय प्राप्त करने और ईश्वरीय ज्ञानके उपार्जन करनेके लिए तैयार होगा।

पवित्र चीजोंके प्राप्त करनेके लिए पहले मनको अपवित्र चीजोंसे हटाना चाहिए और इसके लिए आकांक्षाकी जरूरत है। आकांक्षासे मन वेग और निश्चयसे स्वर्गमें जा सकता है। ईश्वरीय ज्ञानका अनुभव करने लगता है, ज्ञानकी वृद्धि करने लगता है और विशुद्ध केवलज्ञानके प्रकाशसे अपनेको सुमार्ग पर लगा सकता है।

सत्यताकी आकांक्षा करना, पवित्रताकी अभिलाषा रखना और आत्मीक आनंदमें लीन होकर ऊंचे ऊंचे चढ़ना यही ज्ञानप्राप्तिका मार्ग है, शांतिके लिए यथेष्ट उद्योग है और ईश्वरीय मार्गका प्रारम्भ है।

जेम्स एलनकी Passion to peace नामक पुस्तकके Apdiration शीर्षक निबंधका भावानुवाद।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरा दक्षिण-प्रवास ।

[लेखक, श्रीयुत-**उदयलाल काशलीवाल** ।]

(२)

दक्षिणकनाड़ाके जैनोंमें धार्मिक ग्रन्थोंके पठन-पाठनका प्रचार प्रायः नहींसा है और इसी कारण उनकी धार्मिक प्रवृत्ति आज कई बातोंमें बहुत ही बिगड़ गई है । उनमें निर्माल्यका प्रचार अन्य देवी-देवताओंका विशेषतासे आराधन, आदि कितनी ही बातें ऐसी प्रचलित हो गई हैं कि जिनसे वे अपने धर्मको भूलसे गये हैं। हमारे सुननेमें यहाँ तक आया है कि कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपने कार्य्यकी सिद्धिके लिए देवी-देवताओंकी मानता लेकर अन्य हिंसक जातिके लोगों द्वारा जीवोंकी बलि तक दिलाया करते हैं । इस बातपर यद्यपि सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता कि जैनी लोग जिनका कि अहिंसा ही परमधर्म है, इतनी नीच दशा पर पहुँच गये होंगे । पर हम इस बातपर एकदम अविश्वास भी नहीं कर सकते हैं-कारण हमें यह बात एक बड़े अच्छे और प्रतिष्ठित सज्जनसे ज्ञात हुई है । यदि यह बात सच है तो कहना पड़ेगा कि दक्षिणप्रान्तका सीमान्त पतन हो चुका है। किसे खयाल था कि जिस प्रान्तके प्राचीन नर-रत्नोंने आजके युगमें जैनधर्मकी लाज रखली है, उनके पीछे उस प्रान्तमें इतना अन्धेरा हो जायगा और वह उधरके ज्ञान सूर्यको एकदम सदाके लिए ढक देगा ?

ऐसी ही एक और हृदयद्रावक घटना मूड़-विद्रीमें एक प्रतिष्ठित जैनी द्वारा हो रही है-जिसे सनका हृदय काँप उठता है ! मूड़विद्रीसे कोई एक मीलके फासले पर एक " महामारी " नामक देवीका मन्दिर है । उसमें वैसे तो सुअर बकरा आदि कई जानवरोंकी बलि दी जाती है, पर हर शनिवारको मुर्गे बहुत कटते है । उनके खूनसे मंदिरका आँगन तरबतर हो जाता है । इस मंदिरका प्रबंध मूड़विद्रीके एक जैनी सेठके हाथमें है । गवर्नमेण्ट इसके प्रबंधके लिए प्रतिवर्ष कुछ रुपया उन्हें दिया करती हैं, उससे वे मन्दिरका सब प्रबंध करते हैं । यद्यपि यह कहा जा सकता है कि वे स्वयं उस महा अनर्थको नहीं करते हैं, तथापि मन्दिरका सब प्रबंध उन्हींके हाथमें है और वे चाहें तो उस अनर्थको बंद भी करवा सकते हैं; फिर क्या कारण है कि उनका उस ओर ध्यान नहीं जाता ? यदि वे स्वयं अपनेमें उतनी सत्ता नहीं देखते तो सरकारके द्वारा उसे बंद करवानेकी कोशिश क्यों नहीं करते हैं ? कदाचित् सरकार धार्मिक विचारोंमें हस्तक्षेप न करनेके कारण इसे बंद न करे तो उन्हें इसके प्रबंधसे अपना हाथ खींच लेना चाहिए । सुना जाता है कि मंदिरके प्रबंधके लिए गवर्नमेंट जो दो तीन हजार रुपये वार्षिक देती है, उनमेंसे खर्च बहुत थोड़े किये जाते हैं और इस तरह जितना रुपया बाकी बच रहता है, वह उन्हींके पास रहता है । इस लोभके मारे-इसी स्वार्थके कारण वे उन निरप-राध मूकजीवोंकी हत्याके रोकनेका यत्न नहीं करते हैं ! जैनधर्ममें ऐसे बड़े बड़े राजे महाराजे और चक्रवर्त्ती सम्राट् हो गये हैं कि जिन्होंने अपने धन-दौलतको, राज्य-वैभवको पैरोंसे ठुकरा दिया है और आप वनवासी योगी हो गये हैं;

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और उसी धर्मको हम भी पालते हैं पर उनमें और हममें जमीन आसमानका अंतर है। उन्होंने स्वार्थकी तीखी छुरीसे अपनेको बचाया था और हम स्वयं उसे अपने गलेपर रखकर अपने साथ दूसरोंके हजारों गले उससे काट रहे हैं। स्वार्थ तुझे धिक्कार है! क्या कनाड़ाके जैनी भाई इस घृणित कामके रोकनेका कोई प्रयत्न कर उन निरपराध पशुओंके अनन्त आशीर्वादका श्रेय लेंगे?

दक्षिणप्रान्तकी जैसी धार्मिक स्थिति अच्छी नहीं है, उसी तरह वहाँकी सामाजिक स्थिति भी अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा खराब है। मुझे कई लोगोंसे मिलनेका मौका मिला, पर मुझे किसीके मुँहसे सामाजिक चर्चा सुनाई न पड़ी। जान पड़ा कि शिक्षाका प्रचार इस प्रान्तमें बहुत थोड़ा है और वह भी अन्य लोगोंकी देखादेखी अब कुछ कुछ होने लगा है। कनाड़ा प्रान्तके लोगोंमें शिक्षा-प्रचार न होनेका एक बड़ा बाधक कारण यह है कि यहाँकी बस्ती उत्तरप्रांतके लोगोंकी तरह समुदायरूप नहीं है। कोस-कोस, दो-दो कोसके फासले पर एक एक घर बसा हुआ है। जहाँ उनका घर है उसीके आसपास उनकी खेती है। इधर प्रायः सभी जैनी भाई खेतीका धंदा करते हैं–रात दिन उन्हें खेतीके कामोंमें ही फँसे रहना पड़ता है। अतएव अपने बाल-बच्चोंके लिखाने पढ़ानेकी ओर बहुत कम लोगोंका ध्यान जाता है। और न कोई जातीय सम्मेलन ही हुआ करते हैं, जिनमें कि अपनी सामाजिक स्थितिपर विचार करनेका उन्हें मौका मिल सके। अतः इन लोगोंके बाल-बच्चोंको जन्मसे ही इसी खेती आदिकी शिक्षा मिलती है और फिर उनकी सारी जिन्दगी इसी काममें बीतती है। हमारा यह कहना नहीं है कि खेती वगैरह करनी कोई बुरी बात है, परन्तु बच्चोंको छुटपनहीसे इन कामोंमें लगा देना उनकी सारी जिन्दगीको नष्ट कर देना है। उनका वह समय विद्याभ्यास करनेका है, इस लिए उसका उधर ही उपयोग करना उचित और आवश्यक है। जो बालक छुटपनसे पढ़ने लिखनेमें लगा दिये जाते हैं, उन्हें यदि अन्य विषयोंकी साधारण शिक्षाके बाद इन्हीं कामोंकी उत्तम शिक्षा दी जाय तो वे इन कामोंको बड़ी अच्छी तरह कर सकते हैं और उसे उन्नतिपर पहुँचा सकते हैं।

इस ओर शिक्षाप्रचार न होनेका एक और कारण है। यहाँ अपने पिताकी जायदादका वारिस या उत्तराधिकारी लड़का नहीं होता किन्तु भानजा होता है। इस कारण जो दो चार उदाहरण हमारे देखनेमें आये उनसे जाना जाता है कि पिताका मोह या प्रेम अपने लड़के पर कितने ही अंशोंमें कम हो जाता है। इससे उसके लिखाने पढ़ानेकी ओर वे अधिक ध्यान नहीं देते हैं। लड़का होशियार होनेतक अपने पिता-हीके पास रहता है और इस समय तक उसे शिक्षा नहीं मिलती है। जब वह मामाके घर जाता है तो उसे घरके काम धन्धोंमें फँस जाना पड़ता है। इस तरह दोनों ही जगह उसके लिए शिक्षाका द्वार बन्दसा हो जाता है। यह बात मैंने आँखों देखी है कि एक दो विद्यार्थी जो दक्षिणकनाड़ाके उत्तरप्रांतमें पढ़नेके लिए चले आये हैं और उनके पिता, भाई, बन्धु आदि सब मौजूद हैं। उन्हें पाँच पाँच छह छह वर्ष इधर पढ़ते और रहते होगये परन्तु इतने सुदीर्घ समयमें भी उन पत्थरके हृदयवाले उनके पिता और भाई, बन्धुओंने अपने आँखोंके तारे प्यारे बच्चोंकी एक पत्र द्वारा भी खबर न ली–कुशलता न पूँछी! इस उदाहरणसे पाठक जान सकते हैं कि कनाड़ाके जैनी भाई उक्त भानजेके उत्तराधिकारित्वकी प्रथाके कारण अपने लड़कों पर कितना गाढ़ा प्रेम रखते हैं! जब अपनी प्यारी संतान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर ही उनका पूरा प्रेम नहीं, तब वे उनकी शिक्षाकी अधिक चिन्ता न करें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

कुछ लोग शिक्षाकी रुकावटका यह कारण बतलाते हैं कि इधर जैनियोंके घर एक-एक, दो-दो मीलके फासले पर बसे हुए हैं। उनके आस-पास ऐसा कोई पढ़ाईका प्रबन्ध नहीं जहाँ वे अपने बच्चोंको पढ़नेके लिए भेज सकें। पर हमारी समझमें यह साधारण कारण है। क्योंकि जिन्हें अपनी सन्तानको शिक्षा देना हो–और वे उसे आवश्यक समझते हों तो अनेक ऐसे उपाय हैं जिनसे उसकी शिक्षाका प्रबंध किया जा सकता है। कारकलमें एक जैन पाठशाला इसी लिए खोली गई कि उसमें आसपासके लड़के आकर विद्याभ्यास करें। पर उसके मुख्य स्थापक श्रीयुत एम. नेमिराज पड़िवार और उसके प्रधानाध्यापक श्रीयुत पं. के. कुमारैयाजीसे मालूम हुआ कि जैनियोंके लड़के ही पढ़नेको नहीं आते। हमने पाठशालामें जाकर देखा तो उसमें अन्य जातियोंके कोई २५–३० लड़के लड़कियाँ पढ़ती थीं और जैनियोंके सिर्फ दो लड़के थे! मूड़विद्रीमें भी एक पाठशाला है पर जैन विद्यार्थियोंका वहाँ भी अभाव है! मैंगलोरमें जो वहाँसे २४ मील दूर है–दो जैन बोर्डिंग हैं। एक दो वर्ष पहलेका है और एक अभी श्रीयुत एम. नेमिराजने लगभग दस हजारके खर्चसे तैयार कराया है। विद्यार्थी यहाँ भी थोड़े ही हैं। इन सब बातोंसे यही जान पड़ता है कि यहाँके बालक–बालिकाओंके अभिभावकोंका ही इसमें अधिक दोष है। कितने आश्चर्य्यकी बात है कि सारे दाक्षिणकनाड़ाके जैनोंमें एक भी ग्रेज्युएट या धार्मिक विद्वान् इस समय नहीं है। जब समयकी स्थिति देखकर दाक्षिणकनाड़ाके भाई अपनी समाजमें शिक्षा प्रचार करेंगे, तब ही वे अपनी वर्तमान परिस्थितिको सुधार सकेंगे।

गत मनुष्यगणनाकी जो सरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उसके देखनेसे विदित होता है कि दाक्षिणकनाड़ाके जैनोंकी जन–संख्या कुल ८००० के लगभग है। इधरके मूड़बिद्री, कारकल सदृश स्थानोंके विशाल जैनमन्दिरों और बहु-मूल्य प्रतिमाओंको देखकर तो यही जान पड़ता है कि इस प्रान्तमें पहले जैनोंकी संख्या बहुत ज्यादः होगी। वहाँके लोगोंके कहनेसे जान पड़ा कि पहले यहाँ जैनोंके कोई छह सात सौ घर थे। इसी तरह कारकलमें भी तीन चार सौ घर थे। पर अब इन दोनों स्थानोंमें जैनोंके घरोंकी संख्या केवल ३० बची है। उनमेंसे मूड़विद्रीमें २५ के लगभग और कारकलमें पाँच हैं। इस भयंकर ह्रसका क्या कारण हुआ? इस विषयका गहरा अन्वेषण होना चाहिए। कुछ लोग इसका कारण यह बतलाते हैं कि इधरकी कई जैन जातियोंको सत्ताके जोरसे अन्य धर्मियोंने अपनेमें मिला लिया। इसके सिवाय एक और कारण भी हमारी समझमें आता है और वह–'भूतपाण्डि-एक्ट' है, जिससे कि पिताकी जायदादका वारिस लड़का न होकर भानजा होता है। जबसे भारतका शासन न्यायशील वृटिश जातिके हाथमें गया है, तबसे भारतमें ऐसे कोई धार्मिक आक्रमण नहीं हुए जो सत्ताके जोरसे जबरन लोग अपने धर्ममें शामिल किये गये हों। पर उधर जैनियोंकी संख्या तो पचास–पचहत्तर वर्ष पहले भी बहुत थी। तब यह कहा जा सकता है कि उक्त कानूनसे भी जैनसमाजको बहुत हानि उठाना पड़ी है। यहाँके जैनोंके पास स्थावर सम्पत्ति ही प्रायः ज्यादा है और वह पीढ़ी–दरपीढ़ीसे चली आती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कानूनके अनुसार उसे बेचनेका किसीको अधिकार नहीं है—उसका मालिक भानजा ही होता है। यदि किसीके भानजा न हुआ तो उसकी स्थावर सम्पत्तिकी मालिक सरकार होती है। पिताने जो सम्पत्ति अपने परिश्रमसे पैदा की है और यदि वह चाहे तो उसे अपने पुत्रको दे सकता है या अन्य कामोंमें खर्च कर सकता है, पर उसकी जो पीढ़ी-दर-पीढ़ीसे चली आई स्थावर सम्पत्ति है उसकी आमदनीको जब तक वह जीता रहे अपने कुटुम्बपालन आदिमें लगाता है, पर उसके मूलधनको वह किसी तरह नष्ट नहीं कर सकता। उसका मालिक है उसका भानजा। इसी तरह एकके बाद एक मालिक होता रहता है। पर मूल सम्पत्ति सदा रक्षित रहती है। और किसीके यदि भानजा न हुआ तो फिर वह सम्पत्ति सरकार जप्त कर लेती है। इस कानूनसे हजारों घरोंकी सम्पत्ति सरकारके खजानेमें पहुँच गई है और इस तरह कुटुम्बके कुटुम्ब बरबाद हो गये हैं।

ऐसा ही कानून वहाँकी एक शूद्र जातिके लिए है। पर उसकी दशा कैसी है, इसका ठीक पता नहीं। यह बला जैनियोंने अपने आप ही सरपर उठाई थी। कहा जाता है कि भानजेके मालिक होनेकी रीति बहुत पुरानी है। सरकारने जब अपना नया कानून जारी किया तब उसने जैनसमाजसे पूछा था कि तुम्हें इस कानूनमें कोई उज्र तो नहीं है? परिस्थिति और परिवर्तनके न समझने वाले स्वार्थियोंने कह दिया कि हमें इसमें कोई उज्र नहीं। बस, तभीसे यह बला जैनोंके सिरपर पड़ गई, जिसका भयंकर परिणाम वे आज तक भोगते जाते हैं और न जाने कबतक भोगना पड़ेगा। इस बातका अत्यंत खेद है कि यहाँके भाई इस भयंकर प्रलयको आँखोंसे देख रहे हैं तब भी इसकी पुकार सरकारके कानोंतक नहीं पहुँचाते हैं। हमारा अनुमान है कि यदि दक्षिणकनाड़ाके जैनी भाई अब भी न चेतेंगे तो वह दिन बहुत दूर नहीं है जब कि इस प्रान्तके इतिहास मात्रमें इस बातका जिकर रह जायगा कि इधर 'कोई जैन धर्मके पालने वाली जाति हो गई है और अब उसका नाम भी नहीं है।'

इस 'भूतपाण्डि-एक्ट' के सम्बन्धमें ऐसी दन्तकथा चली आ रही है कि प्राचीन कालमें इस प्रान्तमें भूतपाण्डि नामका एक बड़ा भारी जैनी राजा हो गया है। उसके बारह लड़के थे। उसने एक बार जहाज चलानेका विचार किया और उसने एक बड़ा भारी जहाज तैयार करवाया। जब जहाज समुद्रमें उतारा गया और चलनेकी तैयारी की गई तो जहाज वहीं अटक गया। उसे चलानेके लिए बहुत प्रयत्न किये गये पर वह किसी तरह न चला। देवी-देवताओंसे बहुत प्रार्थनायें की गई—बहुतसी शपथें ली गईं, पर जहाज न चला। रातको भूतपाण्डि इसी चिन्तामें पड़ा हुआ था। उस समय किसी यक्षने आकर कहा "तू मुझे नर-बलि भेट चढ़ा तब मैं तेरा जहाज चलने दूँगा।" भूतपाण्डिने उठकर यह सब हाल अपनी स्त्रीसे कहा और उससे अपने बारह लड़कोंमेंसे एक लड़केको 'यक्ष-बलि' के लिए माँगा। उसकी स्त्रीने साफ इंकार कर दिया। उसने कहा—मुझे तुम्हारे धन-दौलतकी इच्छा नहीं, मैं अपने लड़कोंको किसी तरह न दूँगी। स्त्रीका यह सूखा उत्तर पाकर भूतपाण्डि बड़ा निराश हुआ। उसने अपनी स्त्रीको बहुत कुछ समझाया-बुझाया, पर सब व्यर्थ गया। कोई उपाय न देखकर दुःख और पश्चात्तापके मारे वह स्वतः अपनी बलि देनेको तैयार हो गया। यह बात भूतपाण्डिकी बहनको मालूम हुआ। बहनका अपने भाई

पर बड़ा प्रेम था । उसके एक मात्र लड़का था- वह अपने भाईके पास आकर बोली-"भैया, जहाजके लिए तुम्हें नरबालिहीकी जरूरत है न? उसके लिए इतनी चिन्ताकी क्या जरूरत है ? मेरे लड़केको तुम खुशीके साथ इस काममें ले सकते हो । बहनका यह प्यार-यह अपूर्व स्वार्थत्याग देखकर भूतपाण्डि बहुत विस्मित तथा प्रसन्न हुआ । फिर वह अपने भानजेको बलि देनेके लिए जहाजपर ले गया । ज्यों ही वह बलि देनेको तैयार हुआ त्यों ही यक्षने प्रगट होकर कहा-" बस मैं संतुष्ट हो गया । मुझे अब नरबलि नहीं चाहिए । इसके बदले मैं तुमसे यह चाहता हूँ कि तुम अपनी सब सम्पत्तिका मालिक अपने भानजेको बना दो और आगेके लिए अपने राज्य भरमें यह कानून जारी कर दो कि अबसे पिताकी सम्पात्तिका अधिकारी पुत्र न होकर भानजा ही बनाया जाय । " भूतपाण्डिने यक्षके कथनानुसार वैसा ही किया । तभीसे इस प्रान्तमें भानजेके मालिक होनेकी रीति चली आती है । इसके बाद भारतवर्षमें बृटिश शासन स्थापित होनेके समय जिन्होंने जिस रीतिको पसंद किया उनके लिए वैसे ही कानून बना दिये गये और बाकी प्रजाके लिए ' हिन्दू-ला ' जारी किया गया । इस दन्तकथामें सत्यांश कितना है वह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। पर इतना अवश्य है कि कोई ऐसी घटना अवश्य हुई है कि जिसके इस कानूनकी सृष्टि हुई । अस्तु, जो हो, पर इस समय तो दाक्षिणकनाडाके जैनोंके लिए यह कानून कालसमान हो रहा है । उन्हें इसके विरुद्ध अपनी पुकार सरकार तक अवश्य पंहुँचानी चाहिए । इसीमें उनका हित है और ऐसा करनेसे ही वे चिरकाल तक जी सकते हैं ।

दक्षिणकनाड़ाके जैनियोंमें तीन जातियाँ हैं । जैन, शेट्टी और पुरोहित । इनमें जैन और शेट्टी जातियोंमें ४०--५० वर्ष पहले परस्पर विवाह सम्बन्ध होता था, पर अब प्रायः नहीं होता है । कभी कोई ऐसा विवाह हो जाता है। पुरोहित लोग जातिके ब्राह्मण हैं । इस जातिके लोगोंके मैसूरप्रान्तके श्रवणबेलगोला आदि स्थानोंमें ज्याद: घर हैं । इनका विवाह सम्बन्ध इन्हींकी जातिमें होता है । ये जैन ब्राह्मण या उपाध्याय कहलाते हैं । ये जैन मंदिरोंमें बतौर माली व्यासके रहते हैं । भगवान्की पूजन वगैरह ये ही लोग करते हैं । पूजनमें जो द्रव्य चढ़ाया जाता उसे ये लोग ले लेते हैं । यहाँके जैनी इनके साथ खानपानमें परहेज नहीं करते हैं, वे इनके साथ बैठकर अच्छी तरह बिना संकोचके खाते पीते हैं । ये लोग जातिके ब्राह्मण हैं । ये कबसे जैनी हुए इसका कोई विश्वास योग्य प्रमाण नहीं मिलता है । कुछ लोगोंका कहना है कि ये बहुत पुराने समयसे जैनधर्म ही पालते आते हैं । इधर जो अजैन ब्राह्मण जातियाँ हैं इनका उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है ।

शास्त्रोंमें जगह जगह मामेकी लड़कीके साथ ब्याह करनेकी जिस रीतिका जिक्र आया है वह रीति यहाँके जैनियोंमें अबतक जारी है । गोत्र वगैरहका झगड़ा इधर बिलकुल नहीं है । इधर इन बातोंसे कोई हानि नहीं समझी जाती और सचमुच यह रीति बहुत उत्तम और सबके सुभीतेकी है । उत्तरप्राँतकी कुछ जातियाँ इस विषयमें बड़े ही अन्धेरेमें पड़ी हुई हैं । उन्होंने इन साधारण बातोंको इतना महत्व दे दिया है कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं । परिणाम इसका यह हुआ कि ये बातें आज उन जातियोंकी काल बन गई । साधारण लोगोंके लिए इन बातोंसे बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ- उपस्थित होगई हैं । उत्तरप्रान्तकी जैन जातियाँ दक्षिणकना-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ड़ाके जैनियोंकी पद्धतिको स्वीकार करेंगे तो समाजकी बड़ी भलाई हो।

दक्षिणकनाड़ाके जैनोंमें एक बात यह और अच्छी है कि उनमें प्रायः बाल्यविवाह प्रचलित नहीं है। लड़कोंकी उम्र २४–२५ और लड़कियोंकी १४-१५ की हो जाती है तब ब्याह होता है। इस कारण उनका दाम्पत्यजीवन सुखसे बीतता है।

हमारे यहाँ तो ये बातें बड़ी भयानक और पापका कारण समझी जाती हैं। लड़की, और उसका १४–१५ वर्षकी उम्रमें ब्याह! महान् अधर्म! महान् पातक! अधर्म और पातकसे बचनेके लिए जहाँ दस दस, ग्यारह ग्यारह वर्षके लड़के ब्याह दिये जाते हैं, उन जातियोंकी दशा क्यों न भयंकर हो? जो बेचारे अभी बच्चे हैं, ब्याह क्यों किया जाता है इसे समझते नहीं, उनका ब्याह कर देना उनकी सारी जिन्दगी बरबाद करना है।

इधर 'विधवा-विवाह' की रीति भी प्रचलित है। इस प्रथाका कबसे प्रारंभ हुआ और क्यों उसकी आवश्यकता पड़ी इसका पता नहीं चलता है। सुना जाता है कि किसी भट्टारकने इस रीतिको जारी किया था। तलाश करनेसे जाना गया कि उत्तरप्रान्तकी तरह इधर ' विधवा-विवाह ' करने वालेको जातिच्युत नहीं करते हैं। जातिमें उसके साथ एकसा ही बर्ताव किया जाता है। सब उसके साथ बैठकर खाते पीते हैं। दक्षिण प्रान्तके जैनोंकी यह उदारता देखकर आश्चर्य्य होता है। उत्तरप्रान्तमें यदि कभी कोई ऐसा कर बैठता है तो वह घोरपातकी समझ लिया जाता है, जन्मभर उसे किसी तरह जातिमें शामिल होनेका फिर सौभाग्य नहीं मिलता है।

कुछ लोगोंका कहना है कि 'विधवा-विवाह' प्रचलित होनेपर स्त्रियाँ अधिक पापिनी और स्वेच्छाचारिणी होजायँगीं और फिर वे भयंकरसे भयंकर पाप करनेमें न हिचकेंगीं। उनकी आशा तृष्णा बढ़ती जायगी और परिणाम यह होगा कि स्त्रियाँ एकके बाद दूसरा, दूसरेके बाद तीसरा और तीसरेके बाद चौथा पति करके इसी तरह आगे आगे बढ़ती जायँगीं। लेखकको इस बातके जाननेकी बड़ी इच्छा थी कि क्या विधवा-विवाहका सचमुच ही ऐसा भयंकर परिणाम होगा? पर इधर विधवा-विवाहको जायज समझनेवाली जातिको देखकर और उन विधवाओंमें, जो पुनर्विवाह करती हैं, किसी प्रकारका भयंकर पाप या उन अप्राकृतिक कल्पनाओंको, जो निषेधाकोंकी ओरसे की जाती हैं, न होती हुई सुनकर उसे जान पड़ा कि निषेधकोंकी वे सब कल्पनायें अस्वाभाविक और व्यर्थ हैं—उनमें तथ्य नहीं है। और किसी खास व्यक्तिको लेकर यदि वे सबके लिए ही एकसा समझते हैं तो फिर ऐसे अन्याय करनेवालोंके उदाहरण पुरुषों और जिनका पति जीता है ऐसी स्त्रियोंमें भी मिल सकते हैं। इस युक्तिको देकर जबरन किसीके सिरपर दोष मढ़ना और उस जातिको घृणासे देखना अच्छा नहीं। उन्हें कोई ऐसा प्रबल युक्तिवाद उपस्थित करना चाहिए जिससे विधवा-विवाहके समर्थकोंका पक्ष निर्बल पड़ जाय और उन्हें विचार करनेका मौका मिले।

उत्तरप्रान्तकी तरह इस ओर कन्या-विक्रयकी प्रथा नहीं है; हाँ, वृद्धविवाहकी प्रथाने अवश्य ही इधर अपना पैर पसार रक्खा है। पर वह उत्तरप्रान्तसे बहुत ही थोड़े परिमाणमें है। किसी बूढ़ेके पास अच्छी सम्पत्ति देखकर किसी किसी लोभी माता पिताका मन चल जाता है और लड़की धनिकके घरमें जानेसे सुखसे रहेगी, इस विचारसे वे अपनी लड़कीको बूढ़ेके साथ ब्याह देते हैं। जाहिरमें कोई रुपया पैसा नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिया जाता है, गुपचुपकी ईश्वर जाने। अब मैं मूड़बिद्रीसे फिर आगे बढ़ता हूँ।

मूड़बिद्रीसे गाड़ी द्वारा मीजार, कलमुँडकुर आदिमें अपने मित्रोंके यहाँ दो दो, चार चार दिन ठहरता हुआ मैं मेंगलोर आया। मूढ़बिद्रीसे मेंगलोर लगभग २४ मील है। यह बड़ा शहर है। इधर ईसाइयोंका बड़ा जोर है। यहाँ उनके कालेज स्कूल वगैरह सब हैं। कनाड़ाप्रान्तमें चाँवल बहुत पैदा होते हैं और बारहों महीने खाये जाते हैं। इधर काजूकुली, नरियल, सुपारी, जहरीकचुले आदि बहुतसी चीजें पैदा होती हैं। ये चीजें भारतके अन्य प्रान्तोंमें इधरहीसे जाती हैं। मेंगलोरमें दो जैन-बोर्डिंग और एक जैनमन्दिर है। मन्दिर बड़ी अव्यवस्थामें है। इतने बड़े शहरमें जैनियोंका सिर्फ एक घर है। एक बोर्डिंगमें कोई १५–२० विद्यार्थी हैं और दूसरेमें सात। दोनों बोर्डिंगमें एक एक विद्यार्थी एफ. ए. में पढ़ते हैं और बाकी कोई पाँचवी क्लासमें, कोई छट्ठीमें और कोई सातवींमें। नये बोर्डिंगके बनानेवाले एम्. नेमिनाथ पड़िवार बड़े अच्छे स्वभावके और उदार पुरुष हैं। ऐसे कामोंसे आपको बड़ा प्रेम है।

मेंगलोरसे फिर रेल द्वारा बेंगलोर आया। थर्डक्लासकी टिकटके ५।) लगते हैं। यहाँ एक जैनमन्दिर है और दि० जैनोंके कोई २५–३० घर हैं। यहाँके लोगोंमें बड़ी भक्ति है। कोई त्यागी, महात्मा आता है तो वे बड़ी भक्तिसे उसे आहारादि कराते हैं। जैन-स्त्री-समाजमें श्रीमती सौभाग्यवती अनन्तम्मा विशेष उल्लेख योग्य हैं। आप बड़ी ही सरल, धार्मिक प्रकृतिकी स्त्री हैं। आपकी मातृभाषा कनड़ी होने पर भी हिन्दीभाषा पर आपका बड़ा अनुराग है। कोई सौ सवासौ रुपयोंकी हिन्दीपुस्तकें आपने संग्रह कर रक्खी हैं और उन्हें बड़े प्रेमसे पढ़ती हैं। बेंगलोर बड़ा शहर है। शहर और छावनीकी आबादी मिलकर कोई दो लाखके लगभग है। मैसूरप्रान्तकी राजधानी इसे ही कहना चाहिए। वहाँका सब राजकीय काम यहीं होता है। यहाँ कच्चा पक्का गोटा बहुत बनता है।

यहाँ श्वेताम्बर जैनोंका भी एक मन्दिर है और उनकी ग्रहसंख्या भी अधिक है। ये सब प्रायः मारवाड़ी हैं और व्यापारके लिए यहाँ आकर बसे हुए हैं। इनकी कपड़े, बर्तन, सराफी आदिकी बड़ी बड़ी दूकाने हैं। ये लोग बड़े हिम्मतवान् हैं और व्यापारके लिए भारतके हर हिस्सोंमें बसे हुए हैं। इसी कारण इनमें बड़े बड़े धनवान् भी हैं। कूपमण्डूककी तरह घरहीमें रहनेवाले कायर दिगम्बर भाइयोंको इनके द्वारा इस विषयकी शिक्षा लेकर बाहर पैर बढ़ाना चाहिए। आर्थिक दशा व्यापारहीसे सुधर सकती है।

विद्वान् धरणेन्द्र पंडित यहीं रहते थे। मेरे पहुँचनेके एक महीने पहले उनका स्वर्गवास हो चुका था। वे संस्कृतके बड़े अच्छे विद्वान् थे। इनके पास एक बहुत अच्छा श्रुतभंडार था। पर तलाश करनेसे जानपड़ा कि वह सब अस्तव्यस्त हो गया। उसकी पुस्तकें जिनके हाथ लगीं वे ही उन्हें दबा बैठे।

बेंगलोरसे मैसूर आया। थर्डक्लासके ॥ ‌) लगते हैं। दो जैनमन्दिर हैं। श्रीयुत सेठ वर्द्धमानैया इस प्रान्तमें जैनियोंमें अच्छे धनी और प्रतिष्ठित सज्जन हैं। आपने एक जैनबोर्डिंग बना रक्खा है। उसमें कोई ४० के लगभग विद्यार्थी पढ़ते हैं। पाँच छह विद्यार्थी संस्कृत पढ़नेवाले और शेष अंगरेजी पढ़नेवाले हैं। अंगरेजी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके लिए धार्मिक शिक्षाके और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके लिए अंगरेजी-शिक्षाके प्रबन्धकी आवश्यकता है। बोर्डिंगकी लायब्रेरीमें अन्य पुस्तकोंके अतिरिक्त कोई ६०–७० ताड़पत्र पर लिखी संस्कृत और कनड़ी भाषाकी पुस्तकें भी हैं। इन पुस्तकोंके देखनेसे मुझे यहाँ कवि हस्तिमल्लके बनाये मैथिली-परिणय, अंजनापरिणय, और सुभद्रापरिणय ये तीन नाटक मिले। श्रीयुत नेमिसागरजी वर्णीके प्रयत्न और सेठ वर्द्धमानैयाजीकी उदारतासे इन तीनों पुस्तकोंको मैं अपने साथ ले आया हूँ। श्रीमाणिकचन्द्र दिगम्बरजैन-ग्रन्थमालामें ये तीनों नाटक प्रकाशित होकर शीघ्र ही पाठकोंको देखनेको मिलेंगे।

मैसूरके पंचायाति मंदिरमें भी एक श्रुतभंडार है। उसमें २०० के लगभग ताड़पत्र पर लिखी हुई पुस्तकें हैं। देखनेसे जान पड़ा कि उसमें वैद्यक और ज्योतिषके ग्रन्थ ज्यादा हैं और वे प्रायः अन्य धर्मियोंके बनाये हुए हैं। जैनधर्मका उल्लेखयोग्य कोई ग्रन्थ न देख पड़ा!

मैसूरकी सरकारी ओरियण्टल लायब्रेरी भी देखी। उसमें ताड़पत्र पर लिखे और छपे ग्रन्थ बहुत हैं। जैनधर्मके लिखित और मुद्रित सब ग्रन्थ मिलाकर ५०–६० के लगभग हैं। उल्लेख योग्य कोई ग्रन्थ नहीं।

यहाँ संस्कृतके पठन-पाठनका अच्छा प्रचार है। संस्कृत प्रचारके लिए मैसूर इस प्रान्तकी काशी समझा जाता है। यहाँ सरकारकी ओरसे एक बड़ी भारी संस्कृत पाठशाला है। उसमें न्याय, व्याकरण, साहित्य आदि विषयोंकी २५० के लगभग विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं।

सुना गया कि पहले मैसूरके राजमहलमें एक विशाल ग्रन्थालय था। उसमें प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ संग्रह किये गये थे। उनमें जैनधर्मके भी बहुसंख्यक ग्रंथ थे। दुर्भाग्यसे आग लगजानेके कारण राजमहलके साथ साथ ग्रन्थभण्डार भी भस्मीभूत हो गया।

यहाँ पद्मैया नामक एक जैनब्राह्मण रहते हैं; गान विद्यामें वे बड़े कुशल हैं। इनको राज्यकी ओरसे अच्छा आश्रय है। एक श्रुतभंडार इनके यहाँ भी है। खेद है कि लेखकको उस भंडारके देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

यहाँसे श्रवणबेलगोला गया। श्रवणबेलगोला तक रेल न होनेसे बैलगाड़ी द्वारा जाना पड़ा। श्रवणबेलगोला यहाँसे ४० मीलके लगभग है। मैसूरसे श्रीयुत पं० दौर्बलि जिनदास शास्त्रीका भी साथ हो गया था। इस प्रान्तके जैन-समाजमें आप ही एक जैन-विद्वान् हैं। साहित्यमें आपका अच्छा पाण्डित्य है। आपके साथ वार्त्तालाप करनेसे एक बड़े महत्त्वकी बात विदित हुई। आपने कहा—जैनधर्म्ममें जो संध्या, आचमन, तर्पण, यज्ञोपवीत आदि जितने बाह्य आचार हैं—संस्कार हैं, वे सब जैनधर्म्ममें पीछेसे शामिल किए गये हैं। इसका कारण उन्होंने बतलाया—पहले यहाँ ब्राह्मणोंका बड़ा जोर था। जैनियोंसे उनका बड़ा द्वेष था। जैनियोंको वे नास्तिक, शूद्र वगैरह कहकर उनका अपमान करते थे। उन्होंने उस समयके राजाओंको अपने हाथमें करके जैनविद्वानोंका उनके लिए आशीर्वाद देना तक बंद करवा दिया था। जैनधर्म्ममें उस समय बड़े बड़े दिग्गज विद्वान् मौजूद थे। ब्राह्मणोंको यह भय सदा बना रहता था कि कहीं ये लोग राजाको अपने धर्म्ममें शामिल न करलें और फिर उससे हमारी आजीविका न चली जाय। जैनधर्ममें उस समय यज्ञोपवीत आदि बाह्य-आचार न थे और इसी लिए वे शूद्र समझे जाते थे। भगवज्जिनेसन उसी जमानेमें हो गये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। उन्होंने उस समयकी परिस्थितिको देखकर और जैनियोंके सिरसे शूद्रत्वका कलंक दूर करनेके लिए कई ब्राह्मणधर्मकी बातोंको अपनेमें शामिल किया; और उनमें कुछ परिवर्तन कर उन्हें जैनधर्मका रूप दे दिया। आदिपुराणका जरा गहरी दृष्टिसे स्वाध्याय करनेसे जाना जाता है कि जैसा ब्राह्मण लोगोंने अपने राजोंके लिए जैनविद्वानोंका आशीर्वाद वगैरह देना बंद करवा दिया था, ठीक वैसा ही उपदेश आदिपुराणमें जैनराजोंके लिए दिया गया है। ब्राह्मण लोग मिथ्यात्वी; धर्म-द्रोही हैं, उनसे जैनराजोंको कभी आर्शीवाद न लेना चाहिए। शास्त्रीजीने कहा—यही कारण है कि आदिपुराणके पहलेका इस विषयका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। यदि ये बातें जैनधर्म्ममें पहलेसे होतीं तो अवश्य कोई इस विषयका पुराना ग्रन्थ मिलना चाहिए था। शास्त्रीजीके कहनेसे यह भी जान पड़ा कि मैसूर महाराज वैसे हम लोगोंका आशीर्वाद बड़ी खुशीसे लेते हैं पर राज-दरबारमें जैनविद्वान् उन्हें आशीर्वाद नहीं देसकते। इसका कारण बतलाया जाता है कि पुराने समयसे ही ऐसी रीति चली आती है।

शास्त्रीजीने ब्राह्मणधर्मके सम्बन्धमें कहा कि उससमय इस प्रान्तमें शैवधर्मका इतना प्रचण्ड प्रभाव बढ़ गया था कि उससमयके शैवराजाने तलवारके जोरसे हजारों जैनोंको शैव बना लिया था। और जिन्होंने शैवधर्म ग्रहण करनेसे इंकार किया वे तत्काल कत्ल कर दिये गये थे। जिस शैवराजाने यह अधर्म किया था वह पहले जैनी था और किसी खास घटनाके कारण शैव हो गया था। श्रवणबेलगोला छोटासा गाँव है। हजार आठ-सौ घरोंकी बस्ती है। पर जैनधर्मके लिए यह बड़े ही महत्वका स्थान है। यहाँ जैनियोंके लगभग सौ घर हैं। ४० घरके करीब उपाध्योंके हैं और बाकीके अन्य क्षत्रिय जैनोंके। यहाँके जैन लोग अपनेको क्षत्रिय कहते हैं। जान पड़ता है मूडबिद्री आदिके जैन और शेट्टीसे यह अलग ही जाति है। उनका इनका परस्परमें शादी-ब्याह भी नहीं होता है।

गाँवमें तीन जैनमन्दिर हैं। एक भट्टारकजीका मठ भी है। इस गद्दीपर बैठनेवाले सभी भट्टारक चारुकीर्तिके नामसे प्रसिद्ध होते हैं। पहले भट्टारकजीका स्वर्गवास होजानेसे अभी नये भट्टारका पट्टाभिषेक माघ शुक्ल १२ को हुआ है। ये भट्टारक काश्चीके रहनेवाले हैं। पढ़े-लिखे साधारण बतलाये जाते हैं। इस प्रान्तमें यह पद्धति अच्छी है कि जो नये भट्टारक नियत किये जाते हैं वे प्रायः ऐसे होते हैं जो पहले संसार सम्बन्धी सब बातोंका अनुभव कर चुके हों। उत्तरप्रान्तकी तरह ढोंगी बालब्रह्मचारियोंको सहसा अविचारके साथ गद्दीपर नहीं बैठा दिया जाता है। और इस कारण यहाँके भट्टारक प्रायः चारित्रके बिगड़े नहीं होते। समयको देखते हुए कहा जा सकता है कि भट्टारकोंकी अब कोई जरूरत नहीं दीखती, पर कहीं यदि बैठाना ही हो तो इसी रीतिका अनुकरण करना चाहिए। उत्तरप्रान्तके पञ्चायतियोंको इस बातपर अधिक ध्यान देना चाहिए।

यहाँ जो गाँवमें भट्टारकजीके मठके सामने एक विशाल जैनमन्दिर है, वह वीरानसा पड़ा हुआ है। उसकी कुछ भी व्यवस्था नहीं है। मन्दिरमें प्रतिमा हैं, पर साल-सँभाल कुछ नहीं है। शायद ही कभी कोई उसमें झाड़ू लगाता होगा। जहाँ सौ घर जैनियोंके हैं वहाँ एक जैनमन्दिरकी ऐसी दशा हो यह बड़े दुःखकी बात है। पञ्चोंको इसका कोई प्रबन्ध करना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ दो श्रुतभण्डार हैं । एक भट्टारकजीके मठमें और एक श्रीयुक्त पं० दौर्बलि जिनदासजी शास्त्रीके घर पर । शास्त्रीजीके भण्डारकी सूची जैनमित्रमें प्रकाशित हो चुकी है। भट्टारकजीके मठके श्रुतभंडारमें ग्रन्थोंका अच्छा संग्रह बतलाया जाता है । लेखकको उस भंडारके दर्शन न हो सके । उस समय पहले भट्टारकजीका शरीरान्त हो चुका था और नयेका पट्टाभिषेक नहीं हुआ था । इस कारण भंडार बन्द था ।

यहाँ एक निर्ग्रन्थ मुनिराज भी रहते हैं। आपका नाम अनन्तकीर्त्तिजी है। पर आप *निल्लीकारके नामसे प्रसिद्ध हैं । आप बड़े ही* शान्त-स्वभावी हैं । सदा ही हँस-मुख रहते हैं । जिस पहाड़पर गोमटेश्वरकी प्रतिमा है उसी पर चढ़ते समय पहले एक मन्दिर मिलता है, उसमें आप रहते हैं । बारहों महीने आप नग्न रहते हैं । आपका समय ध्यानमें अधिक व्यतीत होता है । कभी कभी सारी सारी रात ही ध्यानमें बैठे बीत जाती है । शास्त्रज्ञान आपका साधारण है । मातृभाषा आपकी कनड़ी है। पर हिन्दीसे आपको बड़ा प्रेम है । हिन्दी ग्रन्थोंका आप प्रायः स्वाध्याय करते रहते हैं। ग्यारह बजे आप आहारके लिए गाँवमें आते हैं। आहार मिलता है तो ले लेते हैं नहीं तो शान्तिसे वापिस लौट जाते हैं । उत्तरप्रान्तके ढोंगी त्यागियोंकी तरह आप कोई प्रकारका आडम्बर नहीं दिखाते हैं । आपके दर्शनोंसे लेखकको बड़ी शान्ति मिली ।

जिस पहाड़पर गोमठस्वामीकी प्रतिमा है उसे विंध्यगिरि कहते हैं। कोई दो फर्लांग ऊपर चढ़ना पड़ता है तब गोमठस्वामीकी प्रतिमाके पास पहुँचते हैं। जब एक फर्लांगके करीब ऊपर चढ़ जाते हैं तब बीचमें एक मन्दिर मिलता है । इसमें आदिनाथ जिनकी अर्द्धासन विराजमान प्रतिमा बड़ी सुन्दर है । इसके सामने दाईं ओर भी एक मन्दिर है। वह साधारण और अव्यवस्थित दशामें है । यहाँसे आगे चलकर जहाँसे गोमठस्वामीके मन्दिरकी सीमा शुरू होती है, वहाँ दरवाजेपर दोनों बाजू कोई पाँच छह फुट ऊँची दो खड्गासन श्याम प्रतिमायें हैं । यहाँसे कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने बाद गोमठस्वामीका मन्दिर आजाता है । दरवाजेमें घुसते ही गोमठेशकी भव्यप्रतिमाका दर्शन होता है । उसे देखते ही नेत्र शीतल होजाते हैं, प्रसन्नताके मारे दर्शकका चेहरा कमलकी तरह खिल उठता है । उस समय जो *आनंद हृदयमें होता है वह इतना अधिक होता है कि उसे* भीतर स्थान न मिलनके कारण मधुर हँसीके रूपमें वह बाहिर उबराता रहता है । यह अनुभव होता है कि हम दुःखपूर्ण मर्त्यलोक छोड़कर किसी दिव्य लोकमें आ बसे हैं । चिन्ता, दुःख, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि जितने विकार हैं वे सब उस समय न जाने कहाँ भाग जाते हैं । हृदय भक्ति-सरोवरमें मग्न हो जाता है । उससमय भक्तिभरे हृदयसे जो आराधना की जाती है और उससे जो आँखोंसे पवित्र आनन्दाश्रुकी मोतीसी कुछ बूँदे गिरती हैं वे अमोल हैं—पवित्र आत्माओंके लिए त्रिलोक भी उनके सामने तुच्छ जान पड़ता है । वह भव्यप्रतिमा इतनी सुन्दर है—इतनी मनोमोहक है कि घंटों उसके दर्शन करते रहो वहाँसे हटनेकी इच्छा ही नहीं होती । इस प्रतिमाको बने हुए कोई ९०० वर्ष हो गये, पर वह ऐसी जान पड़ती है मानो आज ही बनाई गई है । इस प्रतिमाको देखनेके लिए बड़े बड़े अंग्रेजलोग आते हैं । उनसे—कहते सुना गया है कि दुनियाँके किसी हिस्सेपर इतनी सुन्दर मूर्ति नहीं है । बुद्धोंकी मूर्तियाँ इससे भी बड़ी बड़ी बहुत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देखी गई पर निर्माण-सुन्दरतामें इस मूर्तिने सबका नम्बर लेलिया है। मैसूर नरेश तो वर्ष भरमें कोई दो तीन वार इस प्रतिमाको देखनेको आते हैं, ऐसा सुना जाता है।

यदि हृदयके विरुद्ध कहना पाप हो–अनुकूल कहना नहीं, तो मैं कह सकता हूँ कि इस प्रतिमाके दर्शनका जो महत्व मुझे अनुभव हुआ उतना सम्मेदशिखर और गिरनार जैसे महान् तीर्थोंके दर्शनकर भी न हुआ। वहाँ महत्व है तो सिर्फ इतना कि वह निर्वाणभूमि है। पर इसके सिवा वहाँ जो हम लोगोंके लिए पवित्रताके एक महान् आलंबनकी जरूरत है वह आलम्बन वहाँ नहीं है। और यहाँ वह आलंबन है और यही कारण है कि इस दिव्य प्रतिमाके दर्शन कर जो शान्ति-लाभ होता है वह अन्य जगह नहीं होता। मेरे हृदयमें भावना हुई कि यह प्रतिमा जैनधर्मके इतिहासकी एक चिरकाल तक स्थिर रहनेवाली कीर्ति है। जैनी लोग जो प्रतिवर्ष लाखों रुपया तीर्थोंके झगड़ोंमें बरबाद करते हैं क्या ही अच्छा हो यदि वे उस रुपयेको उधरसे बचाकर इस प्रतिमाकी रक्षाके लिए खर्च करें और इस छोटेसे पहाड़को, जो चारों ओरसे अस्तव्यस्त पड़ा हुआ है, एक दिव्य-स्थान–स्वर्गसा बनादें। मैंनें परमात्मासे प्रार्थना की कि " प्रभो, आप इन वर्तमानके झगड़ालू जैनियोंको सुबुद्धि दो जिससे ये भाई भाई आपसमें न कट-मरकर अपने धन और समयका सदुपयोग करना सीखें और पवित्र जैनधर्मके इतिहासकी नीव सुदृढ़ करनेकी ओर इनका ध्यान जाय। "

इस प्रतिमाको गंगवंशीय महाराज राचमल्लके मंत्री और सेनापति चामुण्डरायने प्रतिष्ठित किया है। यह खुले स्थानमें है और सफेद पत्थरकी है। अखण्ड एक ही पत्थरसे यह बनाई गई है। बड़ी ही दिव्य प्रतिमा है। इस प्रतिमाके चारों ओर जो दालान है उसके सामनेके दालानको छोड़कर शेष तीन दालानोंमें और भी बहुतसी प्रतिमायें हैं। वे सब ही काले पत्थरकी हैं। ऊँचाई उनकी ३ फीटसे ५ फीट तककी है। उनमें खड्गासन प्रतिमायें ही ज्यादा हैं।

इस पहाड़के सामने ही एक दूसरा छोटा पहाड़ है। उसकी चढ़ाई बहुत थोड़ी है। इसे चन्द्रगिरि कहते हैं। इस पर कोई सोलह मन्दिर हैं। उनमेंसे दो तीन मन्दिरोंके चित्र 'जैनसिद्धान्तभास्कर' में निकल चुके हैं। एक मन्दिरमें श्रीपार्श्वनाथकी खड्गासन प्रतिमा कोई दस फीट ऊँची है। यह प्रतिमा भी बड़ी सुन्दर है। पाँचवें श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहु स्वामीके स्वर्गवासकी गुहा इसी पहाड़ पर है। गुहा बहुत ही छोटी है। उसमें दो चरणपादुकायें हैं। यहाँसे थोड़ा और बढ़कर नीचा उतरनेसे एक तालाब मिलता है। एक जैनमन्दिर यहाँ भी है। इसमें पार्श्वनाथस्वामीकी पद्मासन सफेद प्रतिमा बड़ी सुन्दर है। यह प्रतिमा कोई चार फीट ऊंची है।

इन दोनों पहाड़ोंपर प्रत्येक मन्दिरका शिलालेख है। उनमें सब मन्दिरोंके बनाने वगैरहका पूरा पूरा परिचय दिया गया है। इस प्रान्तके जैनधर्मके इतिहासकी एक पुस्तक भी बहुत पहले मैसूर गवर्नमेंटकी ओरसे प्रकाशित हो चुकी है। उसका नाम है " इन्स्क्रपृशन्स एट दि श्रवणबेलगोल " उसकी कीमत सात रुपया है। उसमें सब शिलालेखोंकी नकल और गोमटस्वामी तथा अन्य कई मन्दिरों और स्थानोंके फोटू दिये गये हैं। इस प्रान्तमें मूड़बिद्री, कारकल, मेंगलोर, बेंगलोर, मैसूर, श्रवणबेलगोला आदि जितने स्थानोंके दर्शन किये,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनमें काले पत्थरकी और खड्गासन प्रतिमायें अधिक देखनेमें आई । कहीं कहीं बैठी प्रतिमायें भी हैं, पर उनमें अर्द्धपद्मासन–एक पाँव ऊपर रखे हुई ही–ज्यादा हैं । उत्तरप्रान्तमें ऐसी अर्द्धपद्मासन प्रतिमाओंका नाम भी नहीं है । इसका कारण नहीं जान पड़ता ।

यहाँसे बैलगाड़ी द्वारा टिपटूर आया । और ।फिर वहाँसे हुबलीका टिकट लिया । हुबलीमें जैनियोंके कोई ३५० घर हैं । नया जैनमन्दिर तैयार हो रहा है। यहाँसे हुटगीका टिकट लिया । हुटगीमें गाड़ी बदलनेके लिए कोई तीन घंटा रहना पड़ा । यहाँसे पाँच बजे दिनको मदरास मेलमें सवार होकर सबेरे साढ़े छह बजे बम्बई पँहुच गया ।

हिन्दी ।

[ले०–श्रीयुत **रामचरित उपाध्याय** ।]

[१]

छत्र-धारिणी देख तुझे कब, हम सुखसे सोवेंगे हिन्दी ।
तेरे विघ्नोंके बादल कब, तितर वितर होवेंगे हिन्दी ॥

[२]

भारतभरकी प्रिय माता है, मनमें शोच न कर तू हिन्दी ।
ईश्वर तेरा भी त्राता है, दुष्टोंसे मत डर तू हिन्दी ॥

[३]

सच कहता हूँ भारतका तब, उन्नति–कमल खिलेगा हिन्दी ।
सब भाषाओंसे तुझको जब, ऊँचा स्थान मिलेगा हिन्दी ॥

[४]

तेरे सुखद न्यायका दिन वह, बहुत शीघ्र आवेगा हिन्दी ।
धैर्य सहित उद्यम करती रह, समय पलट जावेगा हिन्दी ॥

[५]

तेरी सुन्दरता सच्चाई, किसे न अपनाती है हिन्दी ।
या तेरी है व्यर्थ बडाई, अब तक दुखपाती है हिन्दी ॥

[६]

फिरभी अपने सत्व सभी तू, निश्चित है पावेगी हिन्दी ।
घर घरमें सोल्लास कभी तू, पूजित हो जावेगी हिन्दी ॥

[७]

कर्मवीर तेरे उद्धारक भारतमें उपजेंगे हिन्दी ।
तेरे सुख समृद्धिके हारक, हठको छोड़ भजेंगे हिन्दी ॥

[८]

सबको दुख मिलता है जगमें, सुख पानेके पहले हिन्दी ।
इसी लिए निज उन्नति-मगमें, काँटोंके क्षत सहले हिन्दी ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी विवेकानंदके उदार उपदेश।

[लेखक-**श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा** ।]

--जो मनुष्य धर्म-पागल होता है, उसका सिर दूसरी भाषामें परमात्माका नाम सुनकर तत्काल ही फिर जाता है। धर्म-पागल मनुष्यको सार और असारका कुछ विचार नहीं होता। वह व्यक्ति विषयक विचारोंमें इतना डूबा रहता है, कि दूसरे मनुष्योंकी सत्यताके विषयमें विचार करनेका उसे स्वप्न भी नहीं आता। वह केवल इतना ही देखता है कि सामनेवाला पुरुष स्वधर्मी है या परधर्मी ? उसके सारासार विचारोंकी केवल इतनी ही सीमा है। इसका यह परिणाम होता है, कि उसे स्वधर्मी (चाहे वह चरित्र हीन हो या लाखों अपराध ही क्यों न करता हो) बहुत ही सज्जन, प्रामाणिक, विश्वासी और दयालु दिखाई देता है, और परधर्मी, (चाहे वह कितना ही दयालु और श्रेष्ठाचारी क्यों न हो) अत्यंत-क्रूर, मायाचारी, मिथ्यात्वी, नास्तिक और निन्द्य दिखाई देता है। इतना ही नहीं प्रत्युत धर्मपागल अन्यमतावलम्बियों-परधर्मियोंपर जुल्म करनेसे भी पीछा नहीं हटता है।

—जब हमारी ज्ञान तृष्णा पूर्ण होगी तब जो कुछ हम चाहेंगे वही हमें मिल जायगा। यह नियम अनादि है। जिस वस्तुपर हमारा अन्तःकरण जड़ जायगा वही वस्तु निस्सन्देह हमें मिलेगी, अन्यका मिलना सर्वथा असंभव है। वास्तविक धर्मतृष्णाका उत्पन्न होना महा कठिन कार्य है। यह बात हमें जितनी सरल मालूम होती है, उसे कार्यके रूपमें लाना उतनाही कठिन है। शास्त्र-पुराण पढ़ने या पुस्तकें पढ़लेने या सुन लेनेहीसे धर्मतृष्णा उत्पन्न हो जाती है, यह कहना सर्वथा भूल है। जब हम अपने क्षुद्र मनोविकरोंसे लड़ने लगेंगे, उनको दबानेके लिए बराबर टक्कर लेने लगेंगे, रातदिन उनसे कशम-कश करने लगेंगे और उनके दमन करनेके लिए पूर्ण उत्साह और शक्तिसे काम लेने लगेंगे तब ही समझेंगे कि अब वास्तविक धर्मतृष्णा उत्पन्न हुई है।

—धर्म, यह परमार्थ-ज्ञानका भाँडार—अत्युच्च विद्यापीठ है। यह न कहीं मोल बिकता है न किसी पुस्तकसे ही निकलता है। चाहे तुम सारे संसारके कोने कोनेमें ढूँढ डालो, चाहे हिमालय, आल्प्स या काकेशस पर्वतको देख डालो, चाहे महासागरकी तलीमें इसका पता लगाओ और चाहे मरुधरके या आफ्रिकाके मैदानोंकी रेतीका ज़र्रा ज़र्रा उथल-पाथल कर डालो, मगर जबतक तुम्हें सत्गुरुके दर्शन न होंगे तबतक वह तुम्हें कहींसे भी नहीं मिलेगा।

संसारमें सर्वसाधारण गुरुओंकी अपेक्षा, अत्यन्त श्रेष्ठ और परम सन्माननीय गुरु निराले ही होते हैं। ये गुरु ईश्वरीयसत्ता लेकर आये हुए केवल अवतारी पुरुष होते हैं। उनमें इतना सामर्थ्य होता है कि वे किसीके मस्तक पर हाथ रख कर, शरीरपर उँगली लगाकर ज्यादा क्या, केवल दृष्टिपात मात्रसे ही उसको आत्मज्ञान सिखा देते हैं और उसका उद्धार कर लेते हैं।

भक्तिमंदिरकी नींव पवित्रताकी स्फटिक शिलापर जमाई गई है। बाह्यशरीरशुद्धि और अन्नकी स्वच्छता रखना बहुत ही सरल है; परन्तु अन्तरंगके निर्मल और पवित्र हुए विना बाह्यशुद्धि सब निरर्थक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन लेखक और पंचतंत्र ।

सन् १८५९ ईसवीमें प्रसिद्ध जर्मन अध्यापक थीओडोर बैनफेने पंचतंत्रका अनुवाद प्रकाशित किया । इस अनुवादके प्रकाशित होते ही साहित्यकी खोजमें एक नवीन युगका प्रारंभ हो गया । उस समय पंचतंत्रकी छपी हुई केवल एक ही आवृत्ति उपलब्ध थी । चूँकि बैनफे एक सच्चे विद्वान् थे इस लिए उन्हें केवल उसी आवृत्तिका अनुवाद कर देनेसे संतोष न हुआ; किन्तु उन्हें जितनी हस्तलिखित प्रतियाँ मिल सकी वे सब उन्होंने इकट्ठीं कीं । दुर्भाग्यवश इन प्रतियोंकी संख्या थोड़ी ही थी । उन्होंने अपनी पुस्तकमें एक प्रस्तावना भी लिखी, जिसने यह दिखला दिया कि सभ्य संसार पर भारतीय कथा–साहित्यका कितना बड़ा प्रभाव पड़ा है ।

फ्रांसीसी विद्वान् सिलवेस्ट्रे डी सेसी, जो "कलेलह-दमनह" की अरबी आवृत्तिके प्रथम संपादक थे, उन पथप्रदर्शकोंमें हो गये हैं जो समय समय पर प्रकट होते हैं और साहित्यकी खोजमें भावी संततिके लिए नये मार्ग ढूँढ़ निकालते हैं । इस विद्वान्के बाद बैनफेका ही नम्बर है; परन्तु बैनफेको जो सामग्री उपलब्ध हुई वह बहुत थोड़ी थी, इस लिए अपने अध्ययनसे जो परिणाम उन्होंने निकाले उनमें त्रुटियोंसे बचना असंभव था । उनकी पुस्तककी इन त्रुटियोंको और महत्त्वपूर्ण परिणामोंको पहले पहल विद्वानोंने ऐसा सत्य समझ लिया कि उन्हें उन बातोंमें किञ्चित् भी संदेह न रहा । कुछ समयके बाद लोगोंको संदेह होने लगा । बैनफेकी कई दलीलोंकी कमजोरी लोगोंकी समझमें आने लगी और कुछ विद्वानोंने इतना साहस किया कि बैनफेकी कई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण खोजोंको निरर्थक समझकर फेंक दिया ।

बैनफेकी प्रधान खोज यह थी कि बहुत सी यूरोपीय आख्यायिकाओं और अनेक कहानियोंका निकास भारतवर्षसे हुआ है । इस खोजके प्रतिवादियोंमेंसे जहाँ तक मुझे मालूम है केवल एक विद्वान् ही ऐसा है जो संस्कृत जानता है । परन्तु यह विद्वान्, जिसने एक छोटी सी पुस्तक अन्य साहित्यों पर भारतीय-कहानियोंके प्रभावके विषयमें लिखी है, भारतीय कहानियोंके जो थोड़ेसे छपे हुए संग्रह उपलब्ध हैं उनमेंसे कुछसे ही परिचित है; उसको भारतवर्षके उस विपुल कथा–साहित्यकी कुछ भी खबर नहीं है जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ और केवल हस्तलिखित ग्रंथोंमें ही मिलता है । सच पूछो तो उसने केवल यही साबित किया है कि वह जिस विषय पर लिख रहा है उससे अनभिज्ञ है । परन्तु तुलनात्मक कथा-साहित्यमें जो विद्वान् अत्यन्त प्रवीण हैं–यद्यपि वे भारतीय भाषाओंसे अनभिज्ञ हैं–बैनफेके विरोधी नहीं हैं । जुहानीज़ बोलट्रेको, इमैन्युएल कौसकिनको, और विक्टर चौविनको, जिनका देहान्त हुए कुछ ही महीने हुए हैं और जिन की मृत्युसे रैनहोल्ड कोहलर और फेलिक्सली ब्रेचकी मृत्युके समान साहित्य–संसारको बड़ा भारी धक्का पहुँचा है, इस बातमें कभी संदेह न हुआ कि उत्तरी और पश्चिमी एशिया, आफ्रिका और यूरोपकी जातियोंमें जो आख्यायिकायें और दूसरी तरहकी कहानियाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रचलित हैं उनका निकास भारतवर्षसे ही हुआ है, और डोहनार्टने तो यह भी साबित कर दिया है कि हबशी (नीग्रो) जातिके गुलाम इन कहानियोंको आफ्रीकासे अमेरिका ले गये। उपर्युक्त विद्वानोंने बैनफेकी इस प्रधान खोज पर विश्वास ही नहीं किया, किन्तु उन्होंने उसकी सत्यता कई नई बातोंमें भी प्रमाणित कर दिखाई।

इस निबंधके लेखकने एक लेखमें (जो '**जैन शासन**' के **दीपमालिका**के विशेष अंकमें प्रकाशित हो चुका है) यह दिखाया है कि ईसाई धर्मकी पुस्तकोंमें, बाईबिलमें और पुरानी और नई दोनों तरहकी तौरेतोंमें भी भारतवर्षका बहुत कुछ प्रभाव मौजूद है।

अरबी और फारसी साहित्य भारतीय-कहानियोंसे भरे पड़े हैं, और अब यह प्रमाणित हो चुका है कि आरब्योपन्यास[1], जो अरबीभाषामें सबसे प्रसिद्ध कथा–ग्रंथ है और जिसका अनुवाद कई भारतीय-भाषाओंमें हो चुका है,— प्रधानतः भारतवर्षसे ही निकला है।

समस्त मध्य-कालमें[2] ईसाई संन्यासी और पादरी अपने धर्मोपदेशोंमें बहुतसी कथाओं और निदर्शनोंका प्रयोग किया करते थे। ये कथायें यूरोपकी लगभग सभी जातियोंके यहाँ लैटिन और (यूरोपीय) देशी भाषाओंके ग्रंथोंमें अब तक मिलती हैं। उस समय यूरोपके बहुत कम लोगोंको यह मालूम था कि वे भारतीय-कहानियोंका प्रयोग करते थे।

इन कथा ग्रंथोंमें सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ कलैलह-दमनह है। फारसके हकीम बरज़ोने इस ग्रंथका अनुवाद मूल संस्कृतसे पहलवी भाषामें सन् ५७० ईसवीके लगभग किया; बडने पहलवी भाषासे सिरिया देशकी भाषामें इस ग्रंथका अनुवाद किया और फिर सन् ७५० ईसवीके लगभग अब्दुल्ला इब्नल मुकफ़्फ़ाने इसका अनुवाद आरबी भाषामें कर डाला। अब्दुल्लाके अनुवादसे फिर इस ग्रंथके योरोपीय भाषाओंमें बहुतसे अनुवाद हुए, जिसके द्वारा पश्चिममें इस ग्रंथका सब ग्रंथोंसे आधिक प्रचार हो गया।

यह बात आजसे बहुत पहले मालूम हो चुकी थी कि " कलैलह-दमनह " का निकास भारतवर्षसे हुआ है। सिलविस्ट्रे डी सेसीने इस ग्रंथके इतिहास और प्रचारका स्पष्ट वर्णन लिखा था और अन्य विद्वानोंने १९ वीं शताब्दीमें इस वर्णनमें कई नई खोजें बढ़ाई।

परन्तु, इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथका निकास भारतवर्षसे कैसे हुआ और **अपने ही देशमें** सदियों तक इसका क्या हाल रहा, इन दो विषयोंके संबंधमें लोगोंको बहुत कम बातें मालूम थीं। उस समय इस ग्रंथकी छपी हुई आवृत्ति केवल एक ही थी। यह आवृत्ति **कोज़गार्टन**ने सन् १८४८ ईसवी में प्रकाशित कराई थी। मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि यह आवृत्ति तीन भिन्न भिन्न आधारोंसे बहुत ही बुरी तरह तैयारकी गई थी। बैनफेकी कई त्रुटियोंका एक कारण यह भी है कि उन्होंने अपनी खोजोंमें इसी आवृत्तिको मूलाधार माना था। चूँकि बैनफेके समयमें योरोप वाले जैनोंको बौद्धोंका एक संप्रदाय मात्र समझते थे, इसलिए बैनफेने पंचतंत्रके मूल लेखकको बौद्ध ठहराया। बैनफेने समझा कि 'कलैलह-दमनह' किसी एक ग्रंथका अनुवाद है और इसका कर्ता भी कोई **एक** ही मनुष्य है, परन्तु असलमें यह ग्रंथ कई **भिन्न भिन्न** ग्रन्थोंका संग्रह है। अपनी आवृत्तिके विषयमें कोज़गार्टिनका कथन है कि यह बौद्धोंके एक मूल

१ The Arabian Nights, अर्थात् आलिफलैला।
२ ईसवी सन् ५०० से १५०० तक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथका रूपान्तर (परिवर्तित अनुवाद) है जो ब्राह्मणों द्वारा हुआ है। ब्राह्मणोंने अपने ऐतिहासिक और साहित्यिकप्रेमके कारण इस ग्रंथको नष्ट होनेसे बचा लिया; उन्होंने इसका रूपान्तर किया और इसके वे सब अध्याय छोड़ दिये जो उनके तथा उनके धर्मके प्रतिकूल थे।

इस निबंधके लेखकको ये सब समस्यायें बहुत ही चित्ताकर्षक मालूम हुईं। **अति प्राचीन कालमें योरोपमें सभ्यता एशियासे आई, यह एक ऐसी बात है, जिसको कोई भी मनुष्य, जो इतिहास जानता है, अस्वीकार नहीं कर सकता।** यह प्राचीन कथा-ग्रंथ, जिसको अर्थशास्त्र अर्थात् राज-नीतिका संग्रह भी कह सकते हैं, अपने देश (जन्म-स्थान) से चलते चलते संसारके दूसरे सिरेके देशोंमें पहुँच गया और इसकी गतिको न तो मतमतान्तरोंकी, नीति-शास्त्र विषयक सिद्धान्तोंकी और भाषाकी भिन्नतायें ही रोक सकीं और न भिन्न भिन्न देशों और जातियोंके रीति-रिवाजोंने ही इसकी गतिका विरोध किया; किन्तु यह ग्रंथ जिन जातियोंमें पहुँचा वहीं समाजके संस्कृत और साधारण वर्गोंका सदियों तक प्रेम-पात्र बना रहा—यह बात बड़ी ही कुतूहलजनक है और यह सिद्ध करती है कि दूरवर्ती पूर्व और दूरवर्ती पश्चिममें विचारोंका लेन-देन खूब होता था। और मुझे इस (सार्वभौमिक–धर्मशास्त्र) के--क्योंकि इसका यह नाम बहुत ही उपयुक्त है—इतिहासका अध्ययन करना अत्यन्त चित्ताकर्षक मालूम हुआ।

पहले पहल जब मैंने अपना अध्ययन आरम्भ किया तब मुझे यह आवश्यकीय मालूम हुआ कि छपी हुई आवृत्तियोंको छोड़ कर मूलग्रंथ और उसके रूपान्तरोंकी हस्तलिखित प्रतियोंकी परीक्षा की जाय। मैंने यही किया और मुझे इस काममें कई वर्ष लग गये। मैंने पंचतंत्रकी केवल उन्हीं हस्तलिखित प्रतियोंकी परीक्षा ही नहीं की जो योरोप और भारतवर्षके सार्वजनिक पुस्तकालयोंमें मिल सकीं, किन्तु भारतीय, और योरोपीय विद्वानोंकी कृपासे मैंने निजी पुस्तकालयोंमेंसे हस्तलिखित प्रतियोंका बहुत बड़ा संग्रह प्राप्त कर लिया। अब मेरा अध्ययन समाप्त होगया है और मैं अपने अध्ययनके परिणामोंको पुस्तकाकार प्रकाशित करना चाहता हूँ। मैंने यह पुस्तक जर्मन भाषामें लिखी है और इसका नाम "**पंचतंत्र; उसका इतिहास और उसका भौगोलिक विभाग।**" रक्खा है।

पंचतंत्रके इतिहासके विषयमें मैंने जो खोजें की हैं उनसे ऐसा परिणाम निकला है कि उसकी आशा न तो मैं और न कोई यूरोपीय अथवा भारतीय विद्वान् कर सकता था। **इन खोजोंने मुझ पर यह प्रकट कर दिया है कि जैनोंके साहित्यने, और विशेषकर गुजरात निवासी श्वेताम्बरोंके साहित्यने संस्कृत और भारतवर्षकी देशी भाषाओं पर बड़ा भारी प्रभाव डाला है** और इन खोजोंसे मुझे इस आशातीत बातका भी पता लगा है कि शुकसप्तति (शुक-बहत्तरी) नामक जैनग्रंथका **पूर्णतया** फारसीमें अनुवाद हो चुका है और फिर मुसलमानोंने इस ग्रंथका प्रचार किया है और वे ही योरोप तक इस ग्रंथको ले गये हैं।

---

१. यदि इस चित्ताकर्षक विषयका विशेष ज्ञान प्राप्त करना हो तो कीथ–फाकनर द्वारा संपादित "कलैलह–दमनह" की प्रस्तावना देखनी चाहिए (कैम्ब्रेज यूनीवर्सिटी प्रेस, १८८५ ई०)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कदाचित् कोई यह संदेह करे कि मैंने जो परिणाम निकाले हैं उनका कारण यह है कि मैं जैनोंका––उनके धर्मका––पक्षपाती हूँ, अथवा यह बात है कि मैंने केवल जैनग्रंथोंके आधार पर ही खोजकी है, इस लिए मैं यहाँ पर यह कहे देता हूँ कि पहली बातका उत्तर यह है कि जब मैंने अपना पंचतंत्र विषयक अध्ययन आरम्भ किया तब मुझे जैनोंका अथवा उनके साहित्यका बहुत ही अल्प ज्ञान था, और दूसरी बातका उत्तर यह है कि मैंने इन वर्षोंमें **पंचतंत्रकी जितनी हस्तलिखित प्रतियाँ मिल सकीं** उन सबको इकट्ठा करनेका यथाशक्ति प्रयत्न किया––इसके लिए मुझे सैकड़ों पत्र लिखने पड़े और बहुत धन खर्च करना पड़ा। मुझे अपने अध्ययनके शुरूमें यह आशा थी कि बैनफेके परिणामोंकी पुष्टि होगी, परन्तु इसके बिलकुल विपरीत हुआ, और इस परिणामका कारण न तो पक्षपात है और न यह है कि मैंने सत्यकी खोजमें कुछ उपेक्षा की हो, किन्तु इसका कारण यह है कि जैनोंने और विशेषकर गुजरातके श्वेताम्बरोंने केवल हेमचन्द्रके ही समयमें नहीं, किन्तु इस विद्वान्के बहुत समय पहलेसे और बहुत समय बाद तक अपने देशकी सभ्यता पर बड़ा प्रबल और हितकर प्रभाव ढाला। उन्होंने केवल आपने धर्मकी ही उन्नति न की, जिसके द्वारा उनके देशबन्धुओंने मनुष्यों और पशुओंके प्रति दयाभाव रखना और उनके शासकोंने प्रजापर न्याय करना सीखा; किन्तु उन्होंने संस्कृत और प्राकृतमें, ब्रजभाषा और अपनी बोली गुजरातीमें साहित्य और ज्ञान संबंधी उन्नति भी की। साथ ही साथ जैनके श्रावकोंने विशाल मंदिर बनवाये, जिनसे देश सुशोभित हो गया और ग्रह-निर्माण-कलाकी वृद्धि हुई। उन्होंने हज़ारों हस्तलिखित ग्रंथोंकी नक़ल करवाई और अपने मुनियोंके लिए ग्रंथ-भंडार स्थापित कराये। ये मुनि भी संकीर्ण विचारके न थे। हेमचन्द्रके समान उन्होंने अन्य धर्मानुयायियोंके शास्त्र भी पढ़े, और यही कारण है कि उनका आत्मिक संस्कार, जिसका प्रमाण उस विपुल जैनसाहित्यसे जो इस समय उपलब्ध है भले प्रकार मिलता है और भारतवर्ष भरमें कदाचित् सबसे बढ़ा चढ़ा था। जैन लेखकोंके बिना प्रकृतसाहित्यकी क्या गति होती? मेरा यह अटल विश्वास है कि जैनी अपने उच्च आत्मिक संस्कारके कारण ही भारतवर्षमें सर्वसाधारणके बीचमें और हिन्दू तथा मुसलमान राजाओंके दरबारमें अपने आपको और अपने प्रभावको बनाये रहे। जो मनुष्य विद्वान् न थे उनके लिए जैनोंने देशी भाषाओंमें मनोहर साहित्य तैयार किया और राजाओंके दरबारमें उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दिग्गज विद्वानोंका साहित्य-रचना और विद्वत्तामें मुकाबला किया और उन्होंने इस तरहसे जो मान्यता (गौरव) प्राप्तकी उसके द्वारा उन्होंने राजाओंका ध्यान अपनी प्रजापर न्यायपरता और दयाशीलताके साथ शासन करनेकी ओर आकर्षित किया।

यह दिखलानेके लिए कि साहित्य–रचनामें यह मान्यता कहाँ तक प्रकट हुई और जैन साधुओंने अपने देशवासियोंकी शिक्षाकी सीमाको बढ़ानेका कितना प्रयत्न किया मैं संक्षेपमें अपने पंचतंत्र संबंधी अध्ययनके परिणामोंका उल्लेख करता हूँ।

मूलग्रंथका कर्ता विष्णुशर्मा नामक एक प्रसिद्ध ब्राह्मण था। यह ग्रंथ लगभग ३०० और ५७० ईसवी सन्के बीचमें लिखा गया होगा। इस ग्रंथका कर्ता बैनफेके कथनानुसार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बौद्धधर्मानुयायी न था, किन्तु वह एक वैष्णव था और मालूम होता है कि वह काश्मीरका रहनेवाला था। उसका उद्देश्य राजकुमारोंको अर्थशास्त्र अर्थात् राजनीतिशास्त्र सिखलाना था। इसी लक्ष्यसे उसने एक प्रख्यायिकाके रूपमें पाँच **तंत्र** लिखे और उनके बीच बीचमें विविध ग्रंथोंमेंसे श्लोक उध्दृत करके रख दिये और कहीं कहीं कौटिल्यके अर्थशास्त्रमेंसे, जिसे पंडित आर. शर्मा शास्त्री, बी. ए. ने सौभाग्यवश खोज कर हालमें ही प्रकाशित किया है, गद्य-वाक्य भी उध्दृत किये। इसी कारण ग्रंथकारने अपने ग्रंथका नाम 'तंत्र-आख्यायिका' रक्खा। बैनफेको जो हस्तलिखित प्रतियाँ मिलीं उनमें कुछ कथायें और श्लोक बाहरसे मिलाये हुए हैं, परन्तु फिर भी यह आसानीके साथ दिखाया जा सकता है कि शेषांश मूल ग्रंथ है और इसी मूलमेंसे कलैलह-दमनहके शुरूके पाँच अध्यायोंका और उत्तर-पश्चिमी भारतकी पंचतंत्र नामक संक्षिप्त आवृत्तिका प्रादुर्भाव हुआ है।

कलैलह-दमनह नामक पुस्तकके विषयमें मैं यहाँ कुछ नहीं कहता; क्योंकि जिस किसीको इस प्राचीन पहलवी आवृत्ति और उसके रूपान्तरोंका हाल जाननेकी जिज्ञासा हो वह सुगमताके साथ कीथ-फाकनरकी पुस्तकको—जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है—पढ़ सकता है।

उत्तरी-पश्चिमी-भारतका संक्षिप्त संस्करण जिसका नाम पंचतंत्र है, अब उत्तरी-पश्चिमी भारतमें नहीं मिलता। हमको इस संस्करणका पता दो स्थानोंसे मिलता है, एक तो दक्षिण-भारतमें इस संस्करणकी हस्तलिखित प्रतियाँ सर्वत्र मिलती हैं और दूसरे इसकी केवल एक हस्तलिखित नैपाली प्रति उपलब्ध है जिसमें केवल पद्य-अंश दिया हुआ है और उसमें एक अकेला गद्य-वाक्य भी दिया है, जिसको इस संक्षिप्त गद्य-संस्करणके नकल करनेवालेने भूलसे श्लोक समझ लिया था, परन्तु वह वास्तवमें कौटिल्यके अर्थशास्त्रका एक गद्य-वाक्य है। इस बातसे यह मालूम होता है कि नैपाली संस्करणके मूलमें और इस मूलमें यह भेद है कि इस संस्करणमें बहुतसे अंश ऐसे भी हैं जो हितोपदेशमें मिलते हैं। परन्तु श्लोकों और कथाओंकी संख्या और क्रममें नैपाली पंचतंत्रका मूल संस्करण दक्षिण-भारतके पंचतंत्रके मूल संस्करणसे संपूर्ण समानता रखता है। उसके लेखकने पहले और दूसरे तंत्रोंके क्रमको केवल उलट दिया है; हितोपदेशके कर्त्ता नारायणने भी ऐसा ही किया है।

मैं यहाँपर विस्तारपूर्वक नहीं लिख सकता और न मैं उन प्रमाणोंको दोबारा लिख सकता हूँ जो मैं अपनी उपर्युक्त पुस्तकमें दे चुका हूँ। यहाँपर इतना कहना काफी है कि उत्तरी-पश्चिमी-संक्षिप्त-संस्करण, जिसके कर्त्ताका अस्तित्व कालिदासके बाद मिलता है, क्योंकि उसने कुमारसम्भवके द्वितीय सर्गका ५५-वाँ श्लोक उद्धृत किया है, उत्तरी-पश्चिमी-भारतसे और बंगालसे पूर्णतया बहिष्कृत कर दिया गया। बंगालसे इसे नारायण पंडितकृत हितोपदेशने बहिष्कृत कर दिया। नारायण पंडित बंगालमें ईसवी सन् ८०० और १३७३ (जो सबसे प्राचीन उपलब्ध हस्तलिखित प्रतिकी तारीख है) के बीचमें विद्यमान होंगे,

१. विण्टरनिजने उल्लेख किया है कि इस ग्रंथमें 'दीनार' शब्द कई बार आया है। दिनेरियस नामक रोमन सिक्केको लैटिनमें दीनार कहते हैं। शिलालेखोंसे मालूम होता है कि ईसाकी दूसरी सदीके पहले ही 'दि' की इ (लघु) ई (दीर्घ) में बदल गई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि उन्होंने कामन्दकीयनीति और माघके ग्रथोंसे वाक्य उद्धृत किये हैं । हितोपदेशका अनुवाद बहुतसी योरोपीय और एशियाकी भाषाओंमें (अर्थात् अँग्रेजी, जर्मन, फ्रेञ्च, ग्रीक, बंगाली, ब्रजभाषा, गुजराती, हिन्दी, उर्दू, मराठी, नेवाडी, फारसी और तैलंग) में होगया, और इनमेंसे कई भाषाओंमें उसका अनुवाद कई बार हुआ है । उदाहरणार्थ जर्मनमें इसके छः और अँगरेजीमें आठ अनुवाद मौजूद हैं ।

पंचतंत्रके जिन संस्करणोंका उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं उनमें जैनोंकी कृति बहुत अधिक नहीं है । तंत्र-आख्यायिका एक वैष्णवकी कृति है और यही बात उत्तरी-पश्चिमी-संक्षिप्त संस्करणके विषयमें है, जिससे दक्षिणी और नैपाली पंचतंत्र और हितोपदेशका विकाश हुआ है । हितोपदेश स्वयं एक शैव विद्वान्की कृति है। परन्तु यह बात बड़ी विचित्र है कि हितोपदेशकी वज्रभाषाका रूपान्तर हमको दो जैन हस्तलिखित ग्रंथोमें मिला है; इन दोनों ग्रंथोंमें जुदा जुदा पाठ हैं और इनमेंसे कमसे कम एक ग्रंथ गुजरातमें लिखा गया था । प्रसिद्ध गुजराती पंडित लल्लूलालने स्वयं कहा है कि मेरी ‘ राजनीति ’ किसी संस्कृत ग्रंथका अनुवाद नहीं है, किन्तु मैंने उसे ब्रजभाषाकी एक प्राचीन पुस्तकके आधार पर लिखा है । ब्रजभाषाकी यह प्राचीन पुस्तक हितोपदेश और पंचतंत्रके चतुर्थभाग अर्थात् पंचतंत्रके जैन संस्करणको मिलाकर बनाई गई है । और यह बहुत कुछ संभव है कि उसका कर्त्ता केवल गुजराती ही नहीं, किन्तु जैनधर्मानुयायी भी हो । संस्कृत और देशीभाषाओंमें दक्षिणी-पंचतंत्रके अब भी बहुतसे संस्करण मिलते हैं। देशी भाषाओंके कई संस्करणोंसे और संस्कृत भाषाके एक विस्तृत संस्करणसे पंचतंत्रके जैन-संस्करणोंके प्रभावका पता लगता है, क्योंकि उनमें बहुत-सी कथायें ऐसी मिलती हैं जो **पहले पहल** जैन संस्करणोंमें ही लिखी गई हैं ।

ये जैनसंस्करण जिनका नाम पंचतंत्र **नहीं** किन्तु पंचाख्यान है, भारतीय कथा–साहित्यके इतिहासके लिए सबसे अधिक महत्त्वके हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि जैनोंने और विशेषकर गुजरातके श्वेताम्बरोंने अपने देशकी सभ्यतामें बहुत बड़ा योग दिया है। उन्होंने एक विपुल कथा–साहित्य लिख डाला है । जिसके द्वारा उन्होंने आख्यायिकाओं, पशु–कथओं, उपन्यासों और गल्पोंके रूपमें अपने धर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार किया । इस लिए यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि जैन साधुओं और श्रावकोंने पंचतंत्रके कई रूपान्तर कर डाले और उसको सर्वथा भिन्न भिन्न रूपोंमें बदल दिया ।

इन जैन संस्करणोंमें अर्थात् पंचाख्यानमें जो ग्रंथ सबसे अधिक महत्त्वका है वही सबसे प्राचीन है । इसको किसी जैनसाधुने गुजरातमें लिखा था । दुर्भाग्यवश न तो उनके नामका ही पता है और न समयका; क्योंकि अभी तक किसी ऐसी हस्तलिखित प्रतिका पता नहीं लगा जिसमें ग्रंथकर्ताकी **प्रशस्ति** हो । परन्तु ग्रंथकर्ताने, जैसा कि स्वर्गीय अध्यापक प्रिजोबेलने बतलाया है, रुद्रटका एक श्लोक उद्धृत किया है, इस लिए उसने यह पंचाख्यान **लगभग ८५० ई० के बाद** लिखा होगा और चूँकि पूर्णभद्रने पंचाख्यानके आधार पर अपना ग्रंथ लिखा है, इस लिए यह पंचाख्यान ११९९ ई० अर्थात् संवत् ११५५ के पहले लिखा गया होगा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ।

लेखक, श्रीयुत-**भैयालाल जैन** ।

इस महापुरुषका जन्म कलकत्तेसे ५२ मील पश्चिमकी ओर हुगली जिलेके वीरसिंह नामक एक छोटेसे ग्राममें सन् १८२० ईमें हुआ था।

जब ये पाँच वर्षके हुए तब इनका वहाँकी ग्रामीणशालामें विद्यारम्भ कराया गया। वहाँ तीन वर्षतक इनने लिखना पढ़ना सीखा। फिर इनके पिता इन्हें कलकत्ता ले गये, जहाँ कि वे स्वतः नौकरी करते थे। और इन्हें संस्कृत विद्यालयमें प्रवेश करा दिया। यहाँ इनने २० वर्षकी आयुतक विद्याध्यान किया।

बालक ईश्वर, जो कुछ प्रतिदिन पढ़ता था, वही उसे रात्रिको, अपने पिताको सुनाना पड़ता था, और यदि वह एक शब्द तो क्या, एक अक्षर भी भूलता तो पिता उसे बड़ी निर्दयतासे दंड देते थे। बहुधा अड़ोसी पड़ोसी आकर उसके पितासे उसपर दया करनेको कहा करते थे। एकबार बालक ईश्वर कालेजके क्लार्कके घर भाग गया था। उसने उसपर बहुत सहानुभूति दिखलाई और उसे फिर घर पहुँचा दिया।

घरपर छोटे बालकको बहुत कड़ा परिश्रम करना पड़ता था। उसको अपने कुटुम्बके लिए जिसमें इनके अतिरिक्त इनके पिता और दो छोटे भाई थे, अनाज मोल लेने बाज़ार जाना पड़ता था, घर झाड़ना बुहारना पड़ता था, लकड़ी काटना पड़ती थी और भोजन भी बनाना पड़ता था। कभी कभी तो रसोई बनानेके लिए अन्न भी न रहता था। ये १० बजे रात्रिको सोते थे। इनके पश्चात् इनके पिता जिनको कि १२ बजे रात्रितक काम करना पड़ता था, अपना कार्यबन्द करते ही, इन्हें फिर जगा दिया करते थे और तबसे ये प्रातःकाल तक पढ़ा करते थे।

इनके पिताके पास इतना द्रव्य नहीं था कि जिससे इनको 'फेशनेबिल' कपड़े बनवाए जा सकें। ओढ़नेके लिए एक मोटी चादर, पहिननेके लिए सादी धोती और 'स्लिपरस' पाकर ही बालक ईश्वरको सन्तुष्ट रहना पड़ता था। यह सादी पोशाक ये अपने जीवन भर धारण किये रहे। यहाँ तक कि जब थे धनवान् और प्रसिद्ध हो गये तब भी सिवाय इस पोशाकके इनने और कुछ नहीं पहना।

इतना कड़ा शारीरिक परिश्रम करने पर तथा पेट भर भोजन न मिलने पर, और पूरी नींद भी न सोनेपर, ईश्वरचन्द्रने संस्कृत बहुत ही शीघ्र अध्ययन करली। इनको पारितोषकपर, पारितोषक और छात्रवृत्ति-स्कालरशिप-पर छात्रवृत्तियाँ मिलती चलीं गईं। जब संस्कृतका पूर्ण अभ्यास कर चुके तब २० वर्षकी अवस्थामें इन्हें 'विद्यासागर' की उपाधि मिली।

विद्यासागरको शीघ्र ही सरकारी नौकरी प्राप्त हो गई। इनको पहले पहल फोर्ट विलियम कालेजमें ५० रुपया मासिक पर हेडपंडितकी जगह मिली। इसके पश्चात् संस्कृत कालेजके प्रोफेसर-अध्यापक-नियुक्त किये गये। और फिर उसी कालेजके प्रिंसपल हो गये। सब विद्यार्थी इन पर बहुत प्रेम रखते थे। जितने ये सख्त प्रिंसपल थे, उतने ही दयालु भी थे। ये बहुत गरीब लड़कोंकी फीस और उन्हें हमेशा पुस्तकें देते रहे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्तमें विद्यासागर शालाओंके निरीक्षक–इन्स्पेक्टर–नियुक्त किये गये । इन्होंने बंगाल प्रान्त भरमें दौरा किया और हर जगह शालायें खोलीं । इसके बहुत समय पूर्व इन्होंने अपनी जन्मभूमिमें एक मुफ्त शिक्षाकी शाला, एक रात्रि शाला, एक कन्याशाला और एक औषधालय खोल रक्खे थे । और इन सबका खर्च अपनी ही जेबसे देते थे ।

तीन वर्ष इन्स्पेक्टर रहनेके पश्चात् इन्होंने नौकरीसे स्तीफा दे दिया, और शेष जीवन भर, इन्होंने अपना, अपने कुटुम्बका तथा अपने माता पिताका पोषण, पुस्तकें लिख लिख कर किया ।

ये इतनी शुद्ध सादी और सुन्दर भाषा लिखते थे और इनके लिखनेकी शैली ऐसी अच्छी थी कि इनकी पुस्तकें हर जगह पढ़ी जाने लगीं और इससे इनको खासी आमदनी हुई ।

देशके शासकगण और मंत्री लोग कानून बनाते समय, हिन्दू रीति-रिवाजोंके सम्बन्धमें, इनकी सलाह हर बातमें लेते थे । इनकी बहुत भारी प्रतिष्ठा की जाती थी क्योंकि सब लोगोंको ज्ञात था कि ये अपने समयके सबसे बुद्धिमान्, अच्छे और सबसे विद्वान् पुरुषोंमेंसे हैं । बीस वर्षके पश्चात् भारत सरकारने इन्हें सी. आई. ई. की पदवीसे विभूषित किया ।

विद्यासागर बहुत ही दयालु और उदार पुरुष थे । बालकपनसे ही ये दीन और दुःखियोंकी अपनी शक्ति भर सहायता करते रहे । शालामें जब ये किसी दिन भूखे बालकको देखते थे तो अपने थोड़ेसे भोजनमेंसे कुछ भाग उसे दे दिया करते थे । यदि इनकी शालाका कोई विद्यार्थी बीमार होता तो बालक ईश्वरचन्द्र उसके घर जाते और उसकी शैय्याके पास बैठ कर उसकी सेवा करते थे । जब ये धनवान् हो गये तब सैकड़ों दीन विधवाओं और असहाय अनाथोंका पोषण करने लगे । इनका नाम बंगालके प्रत्येक स्त्री पुरुषकी जिव्हापर रहने लगा । अमीर गरीब ऊंच नीच सब इनपर एकसी प्रीति रखते थे । कोई भी भिक्षुक कभी इनसे निराश होकर नहीं लौटा । इनने अपने फाटक पर कभी किसी दरवान् या चौकीदारको नहीं रक्खा, इस विचारसे कि कदाचित् कोई दीनपुरुष जो इनसे मिलना चाहे कहीं बैरंग ही न लौटा दिया जावे । एक वाक्यमें यह कह सकते हैं कि, विद्यासागर दयाके अवतार थे । उनने अपना जीवन परोपकारके लिए उत्सर्ग कर दिया था ।

विद्यासागरकी अपने पिता पर बहुत प्रीति थी । उन्हें वे अपनी छात्रावस्थामें सब पारितोषक और छात्रवृतियाँ, ज्योंकी त्यों दे दिया करते थे । ज्योंही उनको एक नियत वेतन मिलने लगा त्योंही वे उसमेंसे आधा अपने पिताको देने लगे, और उनके जीवन भर, अपनी कमाई का भाग उन्हें देकर, उनका आरामसे, पोषण करते रहे ।

वे अपनी मातापर, सच्चे हृदयसे प्रेम रखते थे, और उनकी सूक्ष्म आज्ञाका भी पालन करते थे । एक समय उनकी माताने जो कि अपने गाँव पर थीं, इन्हें देखनेको बुला भेजा । श्रावणका महीना था । वर्षा अपनी युवावस्थामें थी । नदी नालोंका खूब पूर चढ़ रहा था । ऐसे समयमें विद्यासागर पाँवपियादे ही चल दिये । मार्गमें इन्हें दो नदियें मिलीं; परन्तु पार उतरनेके लिए वहाँ नौकाका निशान तक नहीं था । रात्रिका समय था, तो भी विद्यासागर अपनी जान हथेली पर लेकर, दोनों को तैर गये ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विद्यासागरसे जो बड़े बूढ़े होते थे उन्हें ये बड़ी आदरकी दृष्टिसे देखते थे। जब ये संस्कृत कालेजके प्रिंसपल हुए तो कालेजके वृद्ध क्लार्क जोकि इन्हें लड़कपनसे जानते थे और जिन्होंने कि इन्हें एक बार, इनके पिता-के कोपसे बचाया था, इनके अपने समीपसे निकलनेपर इन्हें सम्मान देनेके निमित्त वे अपनी कुर्सीसे उठ खड़े हुए; परन्तु प्रिंसपलने बृद्ध महाशयको उनकी कुर्सीपर आरामसे बिठाकर कहा, "मैं आपका अभी बालक ईश्वर ही हूँ; मेरे साम्हने खड़े होकर, कृपया मेरे हृदयको दुखित मत कीजिए।"

इस सभ्य और दयालु महापुरुषका देहान्त सन् १८९१ ई. में हुआ। इनकी मृत्युपर यूरोपीय तथा देशी लोगोंने एकसा शोक प्रगट किया। जब लोगोंने यह हृदयविदारक समाचार सुना कि, उनका एक दयालु और प्रिय सुहृद् उनसे हमेशाके लिए जुदा हो गया तो हज़ारों लोग छाती फाड़ फाड़ कर रोए।

पठन क्योंकर हो?

लेखक, बाबू जुगलकिशोर, मुख्तार।

प्रथम तो 'पठनं कठिनं' प्रभो।
सुलभ पाठक–पुस्तक जो न हो।
हृदय चिन्तित देह सरोग हो,
पठन क्योंकर हो, तुम ही कहो?

रामनाथ।

(ले०, पं० **शिवसहाय चतुर्वेदी**)

रामनाथका स्वभाव संसारमें होनेवाली नित्यकी घटनाओंको खूब बारीकीके साथ देखनेका नहीं था। तो भी उनको बिलकुल लापरवाहीके साथ उड़ाकर उसके दिन निश्चिन्तता पूर्वक नहीं कटते थे। रामनाथके माता पिता वह जब छोटा-सा था तभी मर गये थे, इस कारण उसका लालन–पालन मामाके घर हुआथा। अब भी वह वहीं रहता था। छुटपनसे दूसरेके घर दूसरेके अनुग्रहसे पाले–पोसे जानेपर भी उसके स्वभावका निजी तेज हीनताके मध्यमें बिलकुल नहीं डूब गया था। किसी परान्नभोजी–दूसरेके टुकड़े तोड़ने वाले मनुष्यकी स्वाधीनताकी स्पर्धा संसारकी दृष्टिसे अच्छी नहीं समझी जाती। इसी कारण रामनाथको कोई अच्छी दृष्टिसे नहीं देखता था। जो उसके मुख पर नहीं कह सकतेथे, वे पीठ पाछे, और जो उसके सामने खुले शब्दोंमें कहनेकी क्षमता रखते थे वे समयानुसार मौके मौके पर रामनाथको समझानेकी चेष्टा करते थे, परंतु फल कुछ न होता था, उसकी लापरवाही और भी अधिक बढ़ जाती थी।

भय और शासन क्या वस्तु है इसे रामनाथ बिलकुल नहीं जानता था–उसके कोषमें इन शब्दोंका नाम भी न था; इस कारण खुशामद करके भी कोई उससे एक भी काम नहीं करा सकता था। उसके स्वभावमें एक ऐसी दृढ़ता थी कि वह कठिनसे कठिन प्रसंग पर भी कभी एक कौड़ी व्यर्थ खर्च नहीं करता था। जहाँ उसका कोई मतलब या काम होता था वहाँ वह ठीक समय पर पहुँचता था, और काम निकल जाने-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर उसी समय वहाँसे चला आता था। किसी विपद्ग्रस्त मनुष्यके साथ घड़ी भरमें वह अत्यंत प्रसन्नमनसे अंतरङ्गता बढ़ा लेता था, पर उसकी सहायता कर चुकने पर दूसरे ही दिन वह इस तरह विस्मरण हो जाता था कि उसका नाम भी भूल जाता था। उसके स्वभावमें ऐसी आश्चर्यमय विशेषता थी कि किसी कामके परिणामसे उसे कभी हर्ष या विषाद नहीं होता था। वह जिस कामको करता था यदि उसमें उसे उत्साह मिलता था तो वह उस कामको बहुत साधारण रीतिसे चलाता था, किन्तु यदि उसमें बाधा पहुँचती थी तो वह अंधजिद्दसे उत्तेजित होकर उस कामकी साधनामें और भी अधिक दृढ़तासे लग जाता था।

छुटपनमें जब वह ग्राम्य-पाठशालामें पढ़ता था उस समय कई एक शैतान और मंदबुद्धि सहपाठियोंके साथ मार-पीट या लड़ाई-झगड़ेमें बाजी मारले जानेके सिवाय उसने और किसी विषयमें सफलता नहीं पाई थी। किन्तु-जब १० वर्षकी उमरमें मामा साहबके अनुग्रहसे जबलपूरके एक अंग्रेजी विद्यालयकी सातवीं श्रेणीमें ३६ विद्यार्थियोंके नीचे उसका नाम लिखा गया, तब उसका उत्साह एकदम बढ़ गया। वह कठिन गरमी, घोर वर्षा और दारुण शीतकालमें अपने शरीर और आराम के लिए कुछ भी अवसर न देकर सहपाठियोंकी प्रतिद्वन्दितामें इस तरह उतर गया कि जब वार्षिक-परीक्षाका फल प्रकाशित हुआ, तब छत्तीस विद्यार्थियोंमें वही प्रथम आया। इस तरह वह वर्ष-प्रतिवर्ष प्रत्येक श्रेणीमें उत्तीर्ण होने लगा। जब बीस वर्षकी अवस्थामें परिचित तथा आत्मीय बंधुओंसे श्रद्धा और भक्तिका उपहार पाकर वह बी. ए. की अंतिम परिक्षामें विशेष सन्मानपूर्वक उत्तीर्ण हुआ तब उसकी भाग्यलक्ष्मी अत्यंत स्तुति-वादके संघातसे एकाएक विमुख हो गई।

रामनाथके मामा सरयूप्रसाद मिश्र एक तालुकेदार थे, इस लिए कानूनी-व्यवसाय अर्थात् वकीली ही उनके लिए सबसे अधिक मनुष्यत्वका परिचय देनेवाली विद्या थी। इसी लिए उन्होंने अपने भानजे रामनाथको आगे कानून पढ़नेकी आज्ञा दी। परन्तु रामनाथने अत्यन्त दृढ़ और स्पष्टरीतिसे लिख भेजा कि "वाक्य-विक्रय करके आजीविका चलाना मेरे जैसे क्षुद्र प्रकृतिके आदमीके लिए संभव नहीं है, मैं एम. ए. पास करके अध्यापकी कार्यमें व्रती होना चाहता हूँ।" मामा साहबने गरम होकर उसको जिद छोड़ देनेके लिए लिखा, परन्तु रामनाथने रुष्ट होकर उनके पत्रका जवाब तक न दिया।

इसी समय एक और घटना घटी। रामनाथके बी. ए. पास होनेका समाचार चारों ओर फैलते ही रामनाथके पिताके वासस्थान सिंहपुरके जमीदार बाबू बदरीप्रसादजीने शीघ्र ही रामनाथके साथ अपनी कन्याका संबंध करनेके लिए सरयूप्रसादके पास नाई भेजा।

ऐसे गण्य और प्रसिद्ध धनी जमीदारके साथ विवाह संबंध करनेके लिए सरयूप्रसादको विशेष आग्रह हो सकता है, परन्तु इस विषयमें रामनाथ एकदम उदासीन है। एक बड़े घरसे सम्बन्ध बढ़ानेकी मामाकी इच्छा और अपने भविष्य सौभाग्यकी आशाके सम्बन्धमें लिखे हुए एक विशद और विस्तृत पत्रके उत्तरमें रामनाथने घर न जाकर बड़ी नम्रता और सन्मानके साथ मामाको प्रणाम लिखकर, बहुत ही संक्षिप्त और सरल भाषामें इस मनलुभानेवाले संबंधके विषयमें कुछ ऐसी बातें लिख भेजीं जिससे सरयूप्रसाद, बदरीप्रसाद बाबूके प्रस्तावित विषय पर एकदम निरुत्तर होगये और उसी दिनसे उन्होंने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अकृतज्ञ और उच्छृङ्खल भानजेके साथ पत्रव्यवहार करना भी बंद कर दिया।

इसी एक मामूली घटनाको लेकर मामा भानजे तथा जमीदार और तालूकेदारके बीच वैमनस्य होगया। रामनाथको मालूम हुआ कि मैं पराधीन हूँ और मामाकी कृपासे पढ़ रहा हूँ। उसके मनमें इस पराधीनताकी तीव्रताका अनुभव होते ही उसने लिखना पढ़ना सब छोड़ दिया। रामनाथने जबसे कालेजमें पढ़ना शुरू किया था तबसे वह मामा साहबके खर्चके भारको कम करनेके लिए शहरमें ट्यूशन करता था और इस तरह अपना आधा व्यय निकाल लेता था। यदि वह चाहता तो उसके समान परिश्रमी और उद्योगी पुरुषके लिए शेष आधा खर्चा और जुटा लेना भी कोई कठिन न था, किन्तु उसने ऐसा करनेकी जरूरत न समझी थी। अब मामाके साथ मनमुटाव हो जानेसे उसके हृदयमें एक गंभीर अभिमानकी वेदनाका संचार हो गया, इस लिए उसने अपने भविष्यकी लेशमात्र भी परवा न करके अपने पैतृक ग्रामके समीपी नरसिंहपुरके अँगरेज़ी स्कूलमें तीसरे शिक्षककी जगह पर नौकरी करली और अपने पिताके भद्रासनको पुनः संस्कृत करके रहना प्रारंभ किया। रामनाथ मामाके घर नहीं गया, उसने केवल एक पत्रद्वारा अपनी नौकरीका समाचार उनको लिख भेजा। मामाने पत्रोत्तर नहीं दिया, रामनाथने भी फिर और पत्र नहीं लिखा।

रामनाथ दिनकी पाठशालामें काम करता था और रातको अपने घर स्थापित किये हुए नाइटस्कूलमें बिना कुछ फीस लिये नगरके सब श्रेणीके बालकोंको कई उपयोगी विषयोंकी शिक्षा दिया करता था। अवसर पड़ने पर नगरके समस्त सम्प्रदायोंसे मिलकर उनके अभावोंकी पूर्ति और लड़ाई–झगड़ोंके प्रतिकारके लिए अपनी शक्तिके अनुसार धन और सामर्थ्यसे सहायता करता था। असहाय दीन दुखियों और पीड़ितोंकी सेवा-शुश्रूषा, मृतकोंके अग्निसंस्कार और भूँखे दरिद्रोंको भोजनकी व्यवस्था करनेमें उसका सारा समय बीतता था।

उधर बाबू बदरीप्रसाद बदला लेनेकी चिन्तामें व्यस्त रहते थे। परन्तु थोड़े ही दिनोंमें अपनी ओरसे उपस्थित की गई सैकड़ों अड़चनों और बाधाओंके प्रति उस स्पष्टवक्ता सर्वप्रिय और निर्भीक युवककी बिलकुल लापरवाहीको देखकर उन्हें विस्मित और कुण्ठित होना पड़ा। बदरीप्रसाद समझदार आदमी थे–वे समझ गये कि ऐसे तुच्छ बहानों (मिसों) से एक शिक्षित और चतुर व्यक्तिसे वैर भँजाना कुछ सहज काम नहीं है। इस लिए वे समयकी प्रतीक्षा करने लगे। इधर हठी रामनाथ मगरके साथ वैर करके जलमें रहनेके प्रचलित प्रवादको जितना स्मरण करने लगा, उसको व्यर्थ करनेके लिए उसमें उतनी ही दृढ़ता बढ़ने लगी।

इस तरह एक वर्ष बीत गया। रामनाथके मामा अकस्मात् एक प्राणघातक बीमारीसे पीड़ित हुए। समाचार पाते ही रामनाथने बिना बुलाये जाकर मामाकी मरणपर्यंत खूब जी लगाकर सेवा–शुश्रूषा की। रामनाथका मामा मरते समय उसे हृदयसे आशीर्वाद और अपने छोटे बच्चोंकी तथा धन–सम्मत्तिकी रक्षाका भार दे गया।

श्राद्ध हो चुकनेपर मामीने स्नेहके साथ रामनाथको अपने पास ही रहनेके लिए अनुरोध किया, परन्तु रामनाथ न माना वह अत्यन्त नम्रतापूर्वक इंकार करके अपने घर लौट आया। वह अपना नियमित काम करनेके बाद रातको जागकर परीक्षाके लिए मिहनत करने लगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रामनाथके साथी " बूढ़े तोतेको पढ़नेका शौक चर्राया है । " कह कर उसकी हँसी उड़ाया करते थे । परन्तु रामनाथ उनकी हँसी-दिल्लगीको कानों परसे उड़ा दिया करता था और इस विषयमें कभी उन्हें उत्तर न देता था ।

छह महीनाके पीछे वह एक विचित्र काम कर बैठा-अपने सगे सम्बन्धियोंसे कुछ सलाह लिये बिना ही, बिलकुल सादी रीतिसे, एक मृत्यु-शय्यापर पड़ी हुई विधवा स्त्रीकी असहाया कन्याके साथ विवाह करके उसे अपने शून्य घरमें ले आया । विवाहके दूसरे दिन ही विधवाकी मृत्यु हो गई । उसने मरते समय दामादको आशीर्वाद देकर अत्यंत शान्तिपूर्वक अंतिम स्वास छोड़ी । इस विवाहके कारण रामनाथकी बड़ी निन्दा हुई; पर उसने इसकी तिलभर भी परवा न की ।

उधर रामनाथके विवाहके दूसरे ही दिन बाबू बद्रीप्रसाद जमींदारने एक दूसरे ग्रामके वृद्ध जमींदारके अक्षरशत्रु पुत्रके साथ अपनी प्रियतमा कन्याका बड़ी धूमधामके साथ विवाह कर दिया । इस विवाहोत्सवमें रामनाथको छोड़कर गांवके सभी आदमी निमंत्रित हुए थे ।

कुछ महीने बाद एक दरिद्र कुटुम्बहीन और समाजसे परित्यक्त चांडालकी मृतदेह उठाने और उसके अग्निसंस्कार करनेके अपराधमें रामनाथ अत्यंत निठुराईके साथ जाति-च्युत कर दिया गया । इससे जब अड़ौस-पड़ौसके लोगोंने उसके बैठकखानेमें आकर चिलम तमाखूकी धूम मचाने और पढ़नेमें व्याघात पहुँचाना बंद कर दिया, तब रामनाथ समाजको धन्यवाद देकर एक बहुत बड़े आरामका अनुभव करने लगा । परन्तु घरके भीतरकी दशा ठीक इसके विपरीत हुई-दासियाँ घरका काम करनेके लिए नहीं आती हैं, इस बातसे परिश्रमी पत्नी लक्ष्मीको कुछ दुःख नहीं हुआ; किन्तु पड़ौसकी स्त्रियोंके कोलाहलमय संसर्गसे वह एकदम कैसी निर्दयताके साथ बंचित कर दी गई इस बातकी याद आते ही वह रामनाथको किसी तरह क्षमा नहीं कर सकी । रामनाथने घर आते ही उसकी आँखोंसे छल-छल करके गिरते हुए जलको देखकर कहा—" क्यों क्या हुआ ? "

रामनाथने पत्नीके प्रत्युत्तरमें निःसंकोचभावसे हँसकर कहा-" परचर्चा और कुत्सित परनिन्दामें जो तुम्हारे समयका अपव्यय (बेजा खर्च) होता था, वह बंद हो गया, अच्छा ही हुआ । अब तुम निश्चिन्त होकर पढ़ने लिखनेमें मन लगाओ । "

इन बातोंसे लक्ष्मीको कुछ अधिक संतोष नहीं हुआ । रामनाथ जब स्कूलको जाता था तब वह अपनी मृत माताकी याद कर करके कुछ समय खूब रो लिया करती थी । रामनाथ यथा समय स्कूलसे आकर उसको मृदु-भर्त्सनाके साथ साथ थोड़ी बहुत सान्त्वना देता था

एक दिन रामनाथ उस मृत चांडालकी निःसंतान विधवा स्त्रीको घर ले आया और उसे अपनी माता मानकर घरमें रख लिया । लक्ष्मीक्रोधसे जलकर कहने लगी— " क्या नीचोंके सिवा तुम्हें कोई नहीं मिलता ? संसारमें नीच ही तुम्हारे सब कुछ हैं ! "

रामनाथने हँसकर कहा—" हाँ नीच ही हमारे सब कुछ हैं । किन्तु अब तुमको एक काम करना होगा—दो-पहरके समय इस बेचारीको महाभारतका शान्तिपर्व थोड़ा थोड़ा सुनाना होगा और उसके मनको बहलाना होगा—समझीं ? "

पड़ौसिनियोंकी पर-चरित्र-सम्बन्धी अन्धचर्चा-समिति द्वारा गठित मन्तव्यके अनुसार लक्ष्मीने कहा- " तुम्हारा व्यवहार ऐसे छोटे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोगोंहीके साथ रहता है–क्या तुम्हें बड़े आदमी नहीं मिलते ? ”

रामनाथने उद्वेगरहित होकर कहा–“ बड़े आदमियोंसे मिलने वाले तो सैकड़ों लोग हैं– बेचारे इन गरीबोंसे मिलनेवाला कौन है ? ”

लक्ष्मीने फिर कुछ नहीं कहा । वह यत्नपूर्वक शोक-संतप्त चांडाल-वधूको सान्त्वना देकर और दोपहरको महाभारत सुना सुना कर उसका मन बहलाने लगी ।

[२]

परीक्षाका समय आते ही रामनाथ स्कूलके कामसे छुट्टी लेकर परीक्षा देनेके लिए इलाहाबाद गया । जिस दिन वह परीक्षा देकर घर लौटा उसके दूसरे दिन प्रातःकाल नयेगंजके शेखइमामीने आकर रोते रोते कहा–“आपकी गैरहाजिरीमें जमीदार बाबूके कोपसे मेरे ऊपर एक बड़ी विपद् आ पड़ी है । मेरे घरको एक सरकारी संकीर्ण रास्ता गया है । उसके दोनों ओर ४–५ फैली हुई शाखाओंके बेरी आदिके पेड़ थे। उनके कारण रास्ता बहुत संकीर्ण होगया था और चलने वालोंको तकलीफ होती थी, इस कारण मैंने वे वृक्ष चार पाँच महीने पहले कटाव दिये थे। इस समय बाबू बदरीप्रसाद जमीदार उस जरासी बातको लेकर–झगड़ा करके मेरा सर्वनाश करनेपर उतारू हुए हैं। यहाँ तक कि अब स्त्रियोंके सन्मानकी रक्षा करना भी मेरे लिए कठिन हो गया है ।

रामनाथ उसके साथ घटना स्थल पर गये और वहाँपर अपनी आँखोंसे सब देखभालकर और उसके मुखसे जमीदारके अन्याय और अत्याचारकी बातें सुनकर अत्यंत क्रोधित हो उठे । ऐसे नराधम और स्वार्थी मनुष्यसे मिन्नत करके मामल तय करा लेनेके विरुद्ध उनका मन एकाएक उग्र हो गया । रामनाथने शेखइमामीसे व्यग्रताके साथ पूछा—“कोई गवाह है ? ” शेखइमामीने कहा “हाँ मेरे मामा शेख कल्लू हैं जो जमीदारके यहाँ नायव हैं, एक और गवाह है परन्तु वह भी जमीदारके अनुग्रहसे पलता है ।”

रामनाथ शेखकल्लूको अच्छी तरह जानते थे । एक समय वह उनके मामाके यहाँ गुमास्ता था । इस समय कामकाजकी होशियारीके कारण वह बदरीनाथ बाबूके यहाँ सबसे बड़ा कर्मचारी बन गया है । शेखकल्लूकी उमर बीत गई है, वह सब तरहसे शान्त और बुद्धिमान होने पर भी प्रजा-पीड़नके काममें बिलकुल ममताहीन और धर्मरहित है । बहुतसे लोग मालिककी प्रसन्नताके लिए भी इस तरह अपना स्वभाव एकदम बदल देते हैं ।

रामनाथ उसी समय उसी वेषसे, दोपहरकी धूपमें, हलसे जोते हुए उत्तप्त खेतोंको लांघता हुआ शेखइमामीके साथ सिंहपूरकी जमीदारी कचहरीमें जा पहुँचा । दरवाजे पर खड़े हुए पहरेदारोंको लाँघ करके रामनाथ कचहरीके भीतर गया । उस समय जमीदार बाबू स्नान भोजनके लिए भीतर चले गये थे । नायब गुमास्ता लोग भी जल्दी जल्दी शेष कामको पूरा करके उठनेकी तैयारी कर रहे थे ।

जमीदारके नायव अलपाकाकी एक टिहुनी तक मिरजाई पहिने हुए हुक्का पी रहे थे और एक गुमास्ता सिरपर फेल्प टोपी, बदनमें एक अँगरेजी ढंगका कोट और नीची धोती पहने हुए पास खड़ा होकर एक रजिस्ट्रीकी दलील पढ़कर सुना रहा था । एक मैलीसी कमीज और स्लीपर जूता पहिने शुष्क और कठोर-मूर्ति रामनाथके अकस्मात् सामने आकर खड़े हो जानेसे शेखकल्लूका हुक्का पीना रुक गया–वह विस्मित होकर कहने लगा–“क्या है ?”

रामनाथने भूमिका वगैरह न बाँधकर पास ही खड़े हुए शेखइमामीको एकदम सामने खींचकर,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुरोध नहीं बल्कि आदेशकी तौरपर दृढ़स्वरसे कहा–" अब गरीबोंको तंग करनेसे बाज आओ, इस झूठे मामलेमें गवाही मत दो । "

मलिन वेषधारी अपरिचित व्यक्तिकी इस बड़ी भारी धृष्टतासे चकित होकर नवयुवक गुमास्तेने शीघ्र ही सूखेपनसे कहा—" तुम कौन हो ? क्या पागल तो नहीं हो गये ? "

रामनाथने उसकी ओर नहीं देखा, उन्होंने शेख कल्लूको दृढ़ताके साथ फिर अपना वक्तव्य सुना दिया, और जब शेखइमामी अपने धर्म्मावतार मामाके सामने रोते रोते धर्मकी दोहाई, रक्तका सम्पर्क, नाड़ीकी एकता आदि आध्यात्मिक-तत्त्व लेकर प्रार्थना करनेको उद्यत हुआ, तब रामनाथने सिंहकी तरह गरज कर उसे इस तरह रोक दिया कि इमामीको फिर एक वाक्य कहने की भी हिम्मत न हुई ।

शेखकल्लू रामनाथको अच्छी तरह जानता था एक समय वह उससे डरता भी बहुत था—परन्तु इस समय माथा गरम और पेट भूखा होनेके कारण मर्मघाती वचनोंकी हूलसे उसका चित्त जल उठा उसने अपने स्वभावसिद्ध गुणके अनुसार मृदुवचनोंसे इमामीको कई तीक्ष्ण और मर्मान्तिक बातें सुनाई और बुद्धिमान् रामनाथ बाबूको अनधिकार–चर्चा छोड़कर अपने चरखामें तेल डालने–अपने कामसे प्रयोजन रखनेके लिए उपदेश दिया । रामनाथने असहिष्णु होकर कहा—" हम बातको लेकर झगड़ा करनेके लिए नहीं आये हैं– कामके लिए आये हैं । "

शेखकल्लूने अत्यंत उदासीनतासे आँखोंका चश्माँ निकालकर मधुर वचनोंसे कहा–" ठीक है, किन्तु यह बात तो मेरे हाथकी नहीं है, मालिकके हाथकी है–उन्हें आने दो । "

नवयुवक गुमास्तेने धीरे और शीघ्रतासे कहा–" मालिक ५ बजे आते हैं, या तो जबतक बैठो या लौट जाओ, फिर आना । "

रामनाथ न तो बैठा और न लौटा,–वह गर्जकर बोला–" तुम गवाह हो ? शेखकल्लू ! तुम जानवरका चमड़ा पहिनकर जानवरके पास नायबी करनेके लिए आये हो ? जीने मरनेकी परवा न करके हाथके ज़ोरसे गरीबोंके गलेपर छुरी चलाओगे ? भोजनके बिना जिन अभागोंके प्राण छटपटा रहे हैं, जो बरसामें भीग करके, धूप–गरमीमें जलकर और रोग–शोकमें संतप्त रहकर भी रातदिन परिश्रम कर करके तुम्हारे खजानेको भरते हैं–जिनके परिश्रमसे पैदा किये हुए धनको–रक्तको–साल दरसाल किस्तके रूपमें चूस कर तुम्हारी चरबी बढ़ गई है–उन बेचारोंको निर्दय होकर पीसनेके लिए गाँठका पैसा खर्च करके मुकद्दमा चलाओगे ? तुम्हारा सत्यानाश हो और तुम्हारे जमींदारका सत्यानाश हो । शेखइमामी ! चलो, आओ, देखा जायगा ये क्या करते हैं ? यहाँ सभी जानवर नहीं बसते हैं, आदमी भी हैं । "

शेख इमामीको साथ लेकर रामनाथ जल्दीसे चला गया ।

शेखकल्लू उठकर खड़ा होगया, नवयुवक गुमास्ता दलीलको हाथमें लिए हुए एक ओर बैठ गया । बाहर दरबाजेपर खड़े हुए पहरेवाले अपनी अपनी लाठियोंको संभाल कर एक दूसरको मुँह ताकने लगे ।

[३]

बहुत दौड़-धूप और परिश्रमके बाद शेख इमामीके मुकद्दमेंका अंत हुआ । रामनाथने अपनी गाँठका रुपया खर्च करके अच्छे अच्छे वकील मुख्तारोंको लगाकर बड़ी सरगरमीसे मुकद्दमा लड़ा । फल यह हुआ कि शेख इमामी बेकुसूर कह कर छोड़ दिया गया, और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ तक कि काटे हुए पेड़ोंके मूल्यस्वरूप जो एक रुपया दशआना दंड देनेका विधान हुआ था वह भी प्रधान गवाह शेखकल्लूके दोषसे रद्द होगया । गवाहके कठहरेमें खड़े होकर एक वार उसके मुँहसे " हाँ " के बदले 'न' निकलते ही यह आपत्ति खड़ी हुई । फिर वकीलोंकी जोरदार बहससे सब मामला बिगड़ गया और शेखइमामी बिलकुल बे-दाग छोड़ दिया गया।

शेखइमामीके मुकद्दमेंसे छुटकारा मिलनेके दूसरे दिन ही रामनाथकी परीक्षाका फल प्रकाशित हुआ । रामनाथ प्रथम नम्बरमें पास हो गया । इस संवादको सुनते ही वह विशेष प्रसन्न न हो सका, क्यों कि इस समय वह ऋण चुकानेकी चिन्तामें लगा हुआ था। जब तक एक काम उसके सामने रहता था, तब तक वह उसी कामको पूर्ण उद्यमके साथ करता था; एक कामको पूरा किये विना वह किसी नई चिन्ता या संकल्पको अपने मनमें स्थान न देता था । बड़ी मिहनतके बाद छत्तीसगढ़की एक रियासतमें हाईस्कूलकी हेडमास्टरी मिली— तनख्वाह २००) थी । नौकरी लगते ही एक दिनका विलम्ब न करके रामनाथ उसी दिन छत्तीसगढ़को रवाना हो गया । घर जाकर स्त्रीसे मिलने और रोने-गाने द्वारा विदाके आडम्बरको बढ़ानेकी उसकी बिलकुल इच्छा न थी, इसलिए चांडालकी स्त्रीकी देखरेखमें अपनी स्त्रीको रखकर और इमामी आदिसे मौखिक खोज खबर लेते रहनेकी कह कर वह चला गया ! इधर उसके जानेसे नाइटस्कूल बंद हो गया।

कृतज्ञ इमामी दोनों वक्त घर आकर मातृस्वरूपिणी लक्ष्मीकी खोज खबर ले जाता था और प्रतिदिन रातको परिवार सहित आकर, आप बाहर मकानमें सो रहता और स्त्रीको लड़कों सहित भीतर सोनेके लिए भेज देता था ।

इधर जमीदार बाबूको मुकद्दमा हार जानेके कारण बड़ी लज्जा हुई; वे अपमानके बोझसे दबसे गये । शेखकल्लू स्वास रोगसे पीड़ित रहता ही था,इधर कई दिनोंसे बीमारी बढ़ जानेके कारण उसे लाचार होकर नौकरी छोड़ देना पड़ी । बहुदिन व्यापी रोगकी ताड़ना और मानसिक दुश्चिन्तोंओंके कारण शेखकल्लूका शरीर सूखकर काँटा हो गया था। अब वह किसीसे मिलता जुलता नहीं है, अपने घर चारपाई पर पड़ा रहता है । उसके मकानके पाससे जमीदारके सिपाही जब किसी आसामीको मारते पीटते हुए लेजाते हैं तब उन लोगोंके सकरुण रोदनको सुनकर वृद्ध शेखकल्लू आँखोंमें पानी भरकर भगवान्का नाम लेने लगता है ।

[४]

छह महीनेके बाद रामनाथने सब ऋण चुका दिया और कुछ पैसा भी अपनी गाँठमें कर लिया । उसने लक्ष्मीको लिखा—" मैं शीघ्र ही घरको आता हूँ । "

शेखइमामीने उत्साहित होकर तीन चार दिन परिश्रम करके मकानके चारों ओरका घास कूड़ा छीलकर साफ़ कर दिया । नियत दिनको कई जगहोंसे नाना तरहकी तरकारियाँ लाकर रख दीं और ग्वालोंसे दूध दहीका प्रबंध कर दिया । सफ़ेद धुली धोती और सिरपर लाल साफेको बाँध कर शेखइमामी यथा समय स्टेशन पर बाबूसाहबको लेनेके लिए गाड़ी लेकर पहुँच गया ।

ट्रेन आगई । बाबूरामनाथ एक हाथमें बेग और दूसरेमें ट्रंक लिये हुए गाड़ीसे उतरे । उन्होंने उतरते ही इमामीसे कुशलता पूछी । इमामीने सलाम करके बड़े उत्साहके साथ गांवका आद्योपान्त संक्षिप्त वृतान्त कह सुनाया। रामनाथ गाड़ीमें आ बैठे—इमामी विचित्र शब्दके साथ बैलों-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की पूँछको ऐंठ कर चौड़े रास्तेसे गाड़ीको घरकी और दौड़ाने लगा—गाड़ी घरके दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई।

हाथमें बेग और काँधे पर ट्रँक रक्खे हुए इमामीने रामनाथके साथ घरमें प्रवेश किया। चांडाल-बधूने घूँघट खींचकर दूरसे जमीनपर सिर रखके रामनाथको प्रणाम किया। रामनाथ उससे कुशल पूछकर भीतर चला गया।

किसीने बाहरसे इमामीको पुकारा। वह ट्रंक रखकर बाहर चला गया।

रामनाथने भीतरकी ओर नजर डाली। लक्ष्मीके नेत्र पतिदर्शनके लिए उत्सुक हो रहे थे। मधुरहास्य और सुन्दर वस्त्रभूषणोंसे सुसज्जित लक्ष्मी पतिको देखते ही चूड़ियोंके शब्दके साथ माथेका कपड़ा खींचकर एक ओर सरक गई। स्त्रियाँ कितनी ही पुरानी क्यों न हो—बहुत दिनोंके बाद पतिको देखने पर लज्जा करती ही हैं। रामनाथने आगे बढ़कर अपने दोनों हाथोंसे स्त्रीको अपनी ओर खींचकर पूछा—"अच्छी हो?"

लक्ष्मीका गला भर आया, वह शीघ्र ही बोली—"और तुम?"

ठीक उसी समय पास ही रोनेकी आवाज सुनाई दी—रामनाथने चकित होकर स्त्रीको छोड़कर कहा—"कौन है?"

लक्ष्मीने मलिन मुखसे कहा—"शेखकल्लू बहुत दुःखी है, जब इमामी स्टेशनको गया था उस समय कोई उसको बुलानेके लिए आया था परंतु.........।"

रामनाथ शीघ्र ही वहाँसे चला गया। बाहर जाकर देखा कि इमामी एक पड़ौसीसे बातचीत कर रहा है, पड़ौसी इमामीको बुलाने आया है।

रामनाथने शीघ्र ही कहा—"इमामी!"

इमामीने हाथ जोड़कर कहा—"हुजूर।"

रामनाथ विना कुछ कहे सुने इमामीको साथ लेकर कल्लूके घरकी ओर चलने लगा। पड़ौसी भी विस्मित होकर पीछे पीछे हो लिया।

उनके पहुँचनेके कुछ समय पहले ही शेख-कल्लूकी मृत्यु हो गई थी, स्त्री शोकसे व्याकुल होकर पतिके पैरोंके पास रोरो कर लोट रही थी। रोगी और दुबला तीन वर्षका बालक इस दुखका कारण कुछ न समझकर माताके रोनेके भयसे मृतक पिताके वक्षःस्थलपर पड़कर रोरोकर सिसक रहा था।

रामनाथने जाकर जल्दीसे बच्चेको उठा लिया। बच्चा रोते रोते थक गया था, कुछ शान्त होते ही उसने पीनेके लिए पानी माँगा।

रामनाथ उसको गोदमें लेकर जल्दी जल्दी अपने घर आया और लक्ष्मीसे बोला—"घरमें दूध है? यदि न हो तो इसे कुछ पानी ही पिलाओ।"

लक्ष्मी एक ग्लासमें दूध ले आई और उसने बच्चेको बड़े स्नेहके साथ रामनाथकी गोदसे अपनी गोदमें ले लिया।

रामनाथने कुछ संकोचके साथ कहा—"मैं मुर्देको छूकर आया हूँ।"

लक्ष्मीने स्वामीको प्रणाम करके और उनके पैरोंकी रज माथेपर लगाकर कहा—"तुम पवित्र हो!"

(प्रवासीसे अनुवादित)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org